राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय ।

हज़ूर राधास्वामी साहब के दोहे ।

॥ मंगलाचरण ॥

राधास्वामी नाम, जो गावे सोई तरे ।
कल कलेश सब नाश, सुख पावे सब दुख हरे ॥१॥

ऐसा नाम अपार, कोई भेद न जानई ।
को जाने सो पार, बहुर न जग में जनमई ॥२॥

राधास्वामी गाय कर, जनम सुफल कर ले ।
यही नाम निज नाम है, मन अपने धर ले ॥३॥

बैठक स्वामी अद्भुती, राधा निरख निहार ।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार ॥४॥

गुप्त रूप जहँ धारिया, राधास्वामी नाम ।
बिना मेहर नहिं पावई, जहाँ कोई बिश्राम ॥५॥

कोटि कोटि करूँ बंदना, अरब खरब दंडौत ।
राधास्वामी मिल गये, खुला भक्ति का सोत ॥६॥

संत मता सब से बड़ा, यह निश्चय कर जान ।
सूफ़ी और वेदान्ती, दोनों नीचे मान ॥१॥

सन्त दिवाली नित करें, सत्तलोक के माहिं ।
और मते सब काल के, यौंही धूल उड़ाहिं ॥२॥

अल्लाहू त्रिकुटी लखा, जाय लखा हा सुन्न ।
शब्द अनाहू पाइया, भँवरगुफा की धुन्न ॥३॥

इश्क़ इश्क़ सतनाम धुन, पाई चढ़ सच खंड।
संत फ़क़रबोली जुगल, पद दोउ एक अखंड ॥४॥
संत दया सतगुरु मथा, पाया आद अनाद।
गत मत कहते ना बने, सुरत भई बिसमाद ॥५॥
जब आवे सुत देह में, देह रूप ले ठान।
जब चढ़ उलटे सुन्न को, हंस रूप पहिचान ॥६॥
सुरत रूप अति अचरजी, बर्णन किया न जाय।
देह रूप मिथ्या तजा, सत्त रूप हो जाय ॥७॥
सतगुरु संत दया करी, भेद बताया गूढ़।
अब सुन जीव न चेतई, तौ जानौ अति मूढ़ ॥८॥
भव सागर धारा अगम, खेवटिया गुरु पूर।
नाव बनाई शब्द की, चढ़ बैठे कोइ सूर ॥९॥
बिन सतगुरु सतनाम बिन, कोई न बाचे जीव।
सत्त लोक चढ़कर चलो, तजो काल की सीव ॥१०॥
काल मता वेदान्त का, संतन कहा बनाय।
सत्तनाम सतपुर्ष का, भेद रहा अलगाय ॥११॥
वेद बचन त्रैगुन विषय, तीन लोक की नीत।
चौथे पद के हाल को, वह क्या जाने मीत ॥१२॥
लोक वेद मैं जो पड़े, नाग पाँच डस खायँ।
जनम जनम दुख मैं रहैं, रोवैं और चिल्लायँ ॥१३॥
जिन सतगुरु के बचन की, करी नहीं परतीत।
नहि सँगत करी संत की, वह रोवैं सिर पीट ॥१४॥

क्या हिन्दू क्या मुसलमान, क्या ईसाई जैन।
गुरु भक्ती पूरन बिना, कोई न पावे चैन ॥१५॥
यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि बिचार।
बुद्धि छोड़ करनी करो, तौ पाओ कुछ सार ॥१६॥
गुरु भक्ती दृढ़ के करो, पीछे और उपाय।
बिन गुरु भक्ती मोह जग, कभी न काटा जाय ॥१७॥
मोटे बन्धन जक्त के, गुरु भक्ती से काट।
झीने बन्धन चित्त के, कटैं नाम परताप ॥१८॥
मोटे जब लग जायँ नहिं, झीने कैसे जायँ।
ता ते सब को चाहिये, नित गुरु भक्ति कमायँ ॥१९॥
एक जन्म गुरु भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे मैं निज धाम ॥२०॥

मै तड़पी तुम दरस को, जैसे चन्द चकोर।
सीप चहे जिमि स्वाँति को, मोर चहे घन घोर ॥१॥
जीव जले बिरह अग्नि मैं, क्योंकर सीतल होय।
बिन बरषा पिया वचन के, गई तरावत खोय ॥२॥
जिनको कन्त मिलाप है, तिन मुख बरसत नूर।
घट सीतल हिरदा सुखी, बाजे अनहद तूर ॥३॥
राधास्वामी रक्षक जीव के, जीव न जाने भेद।
गुरु चरित्र जाने नहीं, रहे करम के खेद ॥४॥
सुरत बसावो हिये मैं, शब्द गगन के माहिं।
बिरह बसावो हिये मैं, हिया तिरकुटी माहिं ॥५॥
सुरत शब्द इक अंग कर, देखो बिमल बहार।
मध्य सुखमना तिल बसे, तिल मैं जोत अकार ॥६॥

शब्द स्वरूपी संग हैं, कभी न होते दूर ।
धीरज रखियो चित्त मैं, दीखेगा सत नूर ॥७॥
सत्त नाम सतपुर्ष का, सत्तलोक मैं पूर ।
सूरत चढ़ाओ शब्द मैं, दरशन हाल हजूर ॥८॥
प्रेम प्रीत राचे रहो, कुमति कुटिल से दूर ।
मन सूरत से जूझ कर, रहो शब्द मैं सूर ॥९॥

कबीर साहब के दोहे ।

॥ गुरुदेव का अंग ॥

गुरु को कीजे दण्डवत, कोट कोट परनाम ।
कीट न जाने भृङ्ग को, गुरु करलैं आप समान ॥१॥
गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अंध ।
हौंय दुखी संसार में, आगे जम का फंद ॥२॥
गुरु को मानुष जानते, चरनामृत को पान ।
ते नर नरके जायँगे, जन्म जन्म होय स्वान ॥३॥
लाख कोस जो गुरु बसैं, दीजे सुरत पठाय ।
शब्द तुरी असवार होय, छिन आवे छिन जाय ॥४॥
जो गुरु बसैं बनारसी, शिष्य समुन्दर तीर ।
एक पलक बिसरे नहीं, जो गुन होय शरीर ॥५॥
पहिले दाता शिष भया, जिन तन मन अरपा सीस ।
पीछे दाता गुरु भये, जिन नाम किया बखसीस ॥६॥
शिष खाँडा गुरु मसकला, चढ़े शब्द खरसान ।
शब्द सहे सन्मुख रहे, तो निपजे शिष्य सुजान ॥७॥

सतगुरु साँचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥८॥
गुरू गुरू मैं भेद है, गुरू गुरू में भाव।
सोई गुरु नित बंदिये, जो शब्द बतावे दाव ॥९॥
गुरू किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिँ।
भव सागर के जाल मैं, फिर फिर गोता खाहिँ ॥१०॥
गुरु बिन अहनिस नाम ले, नहीं संत पर भाव।
कहँ कबीर ता दास का, पड़े न पूरा दाव ॥११॥
गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन दान हराम है, जा पूछो बेद पुरान ॥१२॥
कोटिन चंदा ऊगवैं, सूरज कोटि हज़ार।
सतगुरु मिलिया बाहरा, दीसे घोर अँधार ॥१३॥
ऐसा कोई ना मिला, जासौं रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥१४॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिनसे रहिये लाग।
सबही जग सीतल भया, जब मिटी आपनी आग ॥१५॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तौ भी सस्ता जान ॥१६॥
सतगुरु मारा तान कर, शब्द- सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जिये, तौ हाथ न गहूँ कमान ॥१७॥
जाका गुरु है आँधरा, चेला खरा निरन्ध।
अंधे को अंधा मिला, पड़ा काल के फंद ॥१८॥
कनफूँका गुरु हद्द का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिले, तौ लगे ठिकाना ठौर ॥१९॥

गुरु से ज्ञान जो लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोँदू बह गये, राख जीव अभिमान ॥२०॥
कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि के रूठे ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥२१॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक शिष्य समान।
चार लोक की संपदा, सो गुरु दीन्ही दान ॥२२॥
सत्तनाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं।
कहँ लौं गुरु सन्तोषिये, हौंस रही मन माहिं ॥२३॥
मन दीया जिन सब दिया, मन के सँग शरीर।
अब देवे को क्या रहा, यों कथि कहँ कबीर ॥२४॥
तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार।
जो कबहूँ कह मैं दिया, तो बहुत सहेगा मार ॥२५॥
तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहँ कबीर ता दास सौं, कैसे मन पतियाय ॥२६॥
तन मन दीया आपना, निज मन ता के संग।
कहँ कबीर निरभय भया, सुन सतगुरु परसंग ॥२७॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कँवल की ठौर।
कहँ कबीर गुरुदेव बिन, नज़र न आवे और ॥२८॥
गुरु माथे से ऊतरे, शब्द विहूना होय।
ता को काल घसीटि है, रोक न सक्के कोय ॥२९॥
गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहँ कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं ॥३०॥
चार खान मेँ भरमता, कबहुँ न लगता पार।
सो तो फेरा मिट गया, सतगुरु के उपकार ॥३१॥

तन मन ता को दीजिये, जाके बिषया नाहिं।
आपा सबही डार के, राखे साहब माहिं ॥३२॥
गूंगा हूआ बावरा, बहरा हूआ कान॥
पावन ते पिंगला हुआ, सतगुरु मारा बान ॥३३॥
सतगुरु पूरा ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहन कर, घर घर माँगी भीख ॥३४॥
झूठे गुरु की पक्ष को, तजत न कीजे बार।
द्वार न पावे शब्द का, भटके बारँबार ॥३५॥
साँचे गुरु की पक्ष मैं, मन को दे ठहराय।
चंचल ते निश्चल भया, नहिं आवे नहिं जाय ॥३६॥
गुरू बतावैं साध को, साध कहैं गुरु पूज।
अर्स पर्स के मेल मैं, भई अगम की सूझ ॥३७॥
गुरू मिला तब जानिये, मिटे मोह तन ताप।
हर्ष शोक ब्यापे नहीं, तब गुरु आपे आप ॥३८॥
जो कामिन परदे रहे, सुने न गुरु की बात।
सो तो होगी सूकरी, फिरे उघारे गात ॥३९॥
गुरू तुम्हारा कहाँ है, चेला कहाँ रहाय।
क्योंकर के मिलना भया, क्यों बिछुड़े आवे जाय ॥४०॥
गुरू हमारा गगन मैं, चेला है चित माहिं।
सुरत शब्द मेला भया, बिछुड़त कबहूँ नाहिं ॥४१॥
नादी बिन्दी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
कोई तख़्त तले काना मिला, जासे पूछूँ भेद ॥४२॥
वस्तु कहीं ढूंढ़े कहीं, केहि बिधि आवे हाथ।
कहैं कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥४३॥

भेदी लीया साथ कर, दीन्ही वस्तु लखाय।
कोटि जनम का पंथ था, पल मैं पहुँचा जाय ॥४४॥
घट का परदा खोल कर, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साइयाँ, आदि अंत का यार ॥४५॥

॥ सेवक का अंग ॥

ऐसा कोई ना मिला, शब्द गुरू का मीत।
तन मन सौंपे मिरग ज्यौं, सुने बधिक का गीत ॥१॥
सेवक सेवा मैं रहे, सेवक कहिये सोय।
कहैं कबीर सेवा बिना, सेवक कभी न होय ॥२॥
सेवक सेवा मैं रहे, अंत कहूँ मति जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहे, कहैं कबीर समुझाय ॥३॥
सेवक स्वामी एक मत, जो मत मैं मत मिल जाय।
चतुराई रीझैं नहीं, रीझैं मन के भाय ॥४॥
सतगुरु शब्द उलंघ कर, जो सेवक कहिं जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कहैं कबीर समुझाय ॥५॥
सेवकमुखा कहावही, सेवा मैं दृढ़ नाहिं।
कहैं कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाहिं ॥६॥
शिष को ऐसा चाहिये, गुरु को सरबस देय।
गुरु को ऐसा चाहिये, शिष का कछू न लेय ॥७॥
द्वार धनी के पड़ रहे, धका धनी का खाय।
कबहुँ तो धनी निवाजई, जो दर छाँड़ न जाय ॥८॥
कबीर गुरु सब को चहैं, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस शरीर की, तब लग दास न होय ॥९॥

सेवक सेवा में रहे, सेव करे दिन रात।
कहैं कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात ॥१०॥
फल कारन सेवा करे, तजे न मन से काम।
कहैं कबीर सेवक नहीं, चहे चौगुना दाम ॥११॥
कबीरनिरबन्धनबँधरहा, बँध निरबन्धन होय।
करम करे करता नहीं, दास कहावे सोय ॥१२॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागेगा मोर ॥ १३॥
तेरा तुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर।
मेरा मुझको सौंपते, जी धड़केगा तोर ॥१४॥
दुख सुख एक समान कर, हर्ष शोक नहिं ब्याप।
पर-उपकारी निःकामता, उपजे छोह न ताप ॥१५॥
गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमी तोहि दास।
रिद्धि सिद्धि सेवा करैं, मुक्ति न छाँड़े पास ॥१६॥
दास दुखी तो मैं दुखी, आद अंत तिहुँ काल।
पलक एक में प्रगट हो, छिन में करूँ निहाल ॥१७॥

॥ भक्ती का अंग ॥

कबीर गुरु की भक्ति कर, तज विषया रस चौज।
बार बार नहिं पाइहै, मानुष जन्म की मौज ॥१॥
भक्ति भाव भादौं नदी, सभी चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥२॥
भक्ति बीज बिनसे नहीं, आय पड़े जो झोल।
कंचन जो बिष्टा पड़े, घटे न ताको मोल ॥३॥

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ विचार।
उदर भरन के कारने, जनम गँवायो सार ॥४॥
गुरुभक्ती अति कठिन है, ज्यों खाँडे की धार।
बिना साँच पहुँचे नहीं, महा कठिन व्योहार ॥५॥
भक्ति दुहेली गुरू की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारे हाथ सों, सो लेसी सतनाम ॥६॥
जब लग भक्ति सकाम है, तब लग निरफल सेव।
कहँ कबीर वे क्यों मिलैं, निःकामी निज देव ॥७॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माँजे नहीं, होन कहत है दास ॥८॥
जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज।
सर औसर समझे नहीं, पेट भरन सों काज ॥९॥
हरष बड़ाई देख कर, भक्ति करे संसार।
जब देखे कुछ हीनता, औगुन धरे गँवार ॥१०॥
जब लग नाता जाति का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ भक्ती करे, भक्त कहावे सोय ॥११॥
सत्तनाम हल जोइये, सुमिरन बीज समाय।
खंड ब्रह्मँड सूखा पड़े, भक्ति न बिरथा जाय ॥१२॥
भक्ति प्रान ते होत है, मन दे कीजै भाव।
परमारथ परतीत में, यह तन जाय तो जाव ॥१३॥
भक्त भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरुचरन में, भेष जगत की आस ॥१४॥
जहाँ भक्त तहँ भेष नाहिं, वर्णाश्रम तहँ नाहिं।
नाम भक्ति जो प्रेम सों, सो दुर्लभ जग माहिं ॥१५॥

भक्तिकठिनअतिदुर्लभहै , भेष सुगम निज सोय ।
भक्ति जो न्यारी भेष से , यह जाने सब कोय ॥१६॥
भक्ति पदारथ तब मिले , जब गुरु होयँ सहाय ।
प्रेम प्रीत की भक्ति जो , पूरन भाग मिलाय ॥१७॥

॥ प्रेम का अंग ॥

यह तो घर है प्रेम का , खाला का घर नाहिं ।
सीस उतारे भुईं धरे , तब पैठे घर माहिं ॥१॥
प्रेम न वाड़ी ऊपजे , प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा राना जो रुचे , सीस देय ले जाय ॥२॥
प्रेम पियाला जो पिये , सीस दक्षिना देय ।
लोभी सीस न दे सके , नाम प्रेम का लेय ॥३॥
आया प्रेम कहाँ गया , देखा था सब कोय ।
छिन रोवे छिन में हँसे , सो तो प्रेम न होय ॥४॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहे , प्रेम न चीन्हे कोय ।
आठ पहर भीना रहे , प्रेम कहावे सोय ॥५॥
बढ़े घटे छिन एक में , सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजर बसे , प्रेम कहावे सोय ॥६॥
प्रेम पियारे लाल सौं , मन दे कीजे भाव ।
सतगुरु के परताप से , भला बना है दाव ॥७॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरूँ , प्रेमी मिले न कोय ।
प्रेमी सौं प्रेमी मिले , गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥८॥
जा घट प्रेम न संचरे , सो घट जान मसान ।
जैसे खाल लुहार की , स्वाँस लेत बिन प्रान ॥९॥

प्रेम बनिज नहिँ कर सके, चढ़े न नाम की गैल।
मानुष केरी खालरी, ओढ़ फिरे ज्यौँ बैल ॥१०॥
प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
सतगुरु बिना मिटे नहीँ, मल मनसा का दाग ॥११॥
जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिँ, तहाँ न बुध ब्योहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिने तिथ बार ॥१२॥
प्रेम पावरी पहिर कर, धीरज काजल देय।
सील सिंदूर भराय कर, यौँ पिव का सुख लेय ॥१३॥
प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, तौ नैन देत हैँ रोय ॥१४॥
प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावे गृह मेँ बास कर, भावे बन मेँ जाय ॥१५॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दुरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुर्लभ सतगुरु देश ॥१६॥
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान मेँ दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥१७॥
पिय रस पिया सो जानिये, उतरे नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहे, पिये अमी रस सार ॥१८॥
कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम मेँ रम रहा, और अमल क्या खाय ॥१९॥
कबीर भट्ठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौँपे सो पीवसी, नातर पिया न जाय ॥२०॥
जब मैँ था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैँ हम नाहिँ।
प्रेम गली अति साँकरी, ता मेँ दो न समाहिँ ॥२१॥

नैनौं की कर कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकौं की चिक डाल के, पिया को लिया रिझाय ॥२२॥
जब लग मरने से डरे, तब लग प्रेमी नाहिं।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समुझ लेहु मन माहिं ॥२३॥
लौ लागी तब जानिये, छूट न कबहूँ जाय।
जीवत लौ लागी रहे, मूए माहिँ समाय ॥२४॥
लौ लागी कल ना पड़े, आप बिसरजन देह।
अमृत पीवे आत्मा, गुरु से जुड़े सनेह ॥२५॥
जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहे ओर।
अपनी देह की को गिने, तारे पुरुष करोड़ ॥२६॥
लागी लागी क्या करें, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार हो जाय ॥२७॥
लागी लागी क्या करे, लागी नाहीं एक।
लागी सोई जानिये, जो करे कलेजे छेक ॥२८॥
लागी लागी क्या करे, लागी सोइ सराह।
लागी तबही जानिये, जो उठे कराह कराह ॥२९॥
लगी लगन छूटे नहीं, जीभ चौंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार को, जाहि चकोर चबाय ॥३०॥
जो तू पिय की प्यारिनी, अपना कर ले री।
कलह कल्पना मेट के, चरनौं चित देरी ॥३१॥
पिया का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥३२॥
पिया का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जाने बापुरी, कहे आँगन टेढ़ा ॥३३॥

जा खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा।
कहैं कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु सेवा ॥३४॥
सीस उतारे भुइँ धरे, ऊपर राखे पाँव।
दास कबीरा यौं कहे, ऐसा होय तो आव ॥३५॥
यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काट पग तर धरे, तब निकट प्रेम का स्वाद ॥३६॥
सीस काट पासँग किया, जीव सेर भर लीन।
जो भावे सो आय लो, प्रेम आगे हम कौन ॥३७॥
प्रेम पियाला भर पिया, राच रहे गुरु ज्ञान।
दिया नगाड़ा प्रेम का, लाल खड़े मैदान ॥३८॥
प्रेम बिकंता मैं सुना, माथा साटे हाट।
पूछत बिलँब न कीजिये, तत्छिन दीजे काट ॥३९॥
प्रेम प्रीत मैं रच रहे, मोक्ष मुक्ति फल पाय।
शब्द माहिं तब मिल रहे, नहिं आवे नहिं जाय ॥४०॥
जो तू प्यासा प्रेम का, सीस काट कर गोय।
जब तू ऐसा करेगा, तब कुछ होय तो होय ॥४१॥
और सुरत बिसरी सकल, लौ लागी रहे संग।
आव जाव कासौं कहूँ, मन राता गुरु रंग ॥४२॥
जब लग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीस।
लौ लागी कल ना पड़े, अब बोल ना हदीस ॥४३॥

पतिव्रता अर्थात गुरुमुख का अंग ॥

पतिव्रता के एक है, बिभचारिन के दोय।
पतिव्रता बिभचारिनी, कहो क्यौं मेला होय ॥१॥

पतिब्रता को सुख घना, जाके पति है एक।
मन मैली बिभचारिनी, जाके खसम अनेक ॥२॥
पतिब्रता मैली भली, काली कुचैल कुरूप।
पतिब्रता के रूप पर, वारूँ कोटि सरूप ॥३॥
पतिब्रता पति को भजे, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥४॥
नैनाँ अंतर आव तू, नैन झाँप तोहि लूँ।
ना मैं देखूँ और को, ना तोहि देखन दूँ ॥५॥
कबीर सीप समुद्र की, रटे पियास पियास।
और बूँद को ना गहे, स्वाँत बूँद की आस ॥६॥
पपिहा का पन देख कर, धीरज रहे न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ न बोरी चंच ॥७॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहु न होय अकाज।
पतिब्रता नाँगी रहे, तो वाही पति को लाज ॥८॥
मैं सेवक समरत्थ का, कोई पुरबला भाग।
सोती जागी सुन्दरी, साँई दिया सुहाग ॥९॥
पतिब्रता के एक तू, तुम बिन और न कोय।
आठ पहर निरखत रहे, सोई सुहागिन होय ॥१०॥
इकचितहोयनापियमिलैं, पतिब्रत ना आवे।
चंचल मन चहुँ दिस फिरे, पिय कहो कैसे पावे ॥११॥
सुन्दर तो साँई भजे, तजे आन की आस।
ताहि न कबहूँ परिहरे, पलक न छाँड़े पास ॥१२॥
चढ़ी अखाड़े सुन्दरी, माँड़ा पिउ सौं खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जरे ज्यौं तेल ॥१३॥

सती जलन को नीकसी, चित घर एक विवेक।
तन मन सौंपा पीव को, अन्तर रही न रेख ॥१४॥
सती जलन को नीकसी, पिउ का सुमिर सनेह।
शब्द सुनत जिव नीकसा, भूल गई सब देह ॥१५॥
पतिब्रता मैली भली, गले काँच की पोत।
सब सखियन मैं यौं दिपे, ज्यौं रबि शशि की जोत ॥१६॥
पतिब्रता पति को भजे, पतिभज धरे बिस्वास।
आन दिशा चितवे नहीं, सदा जो पिउ की आस ॥१७॥
पतिब्रता बिभचारिनी, इक मन्दिर मैं बास।
यह रँग राती पीव की, वह घर घर फिरे उदास ॥१८॥
नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अन्तर है हेत।
पतिबरता पति को भजै, कबहुँ नाम नहिं लेत ॥१९॥
सुरत समानी नाम मैं, नाम किया परकाश।
पतिबरता पति को मिली, पलक न छाँड़े पास ॥२०॥
साईं मोर सुलच्छना, मैं पतिबरता नार।
द्यो दीदार दया करो, मेरे निज भरतार ॥२१॥
जो यह एक न जानिया, बहु जाने क्या होय।
एकै ते सब होत है, सब सौं एक न होय ॥२२॥
जो यह एक न जानिया, तौ जाना सब जान।
जो यह एक न जानिया, तौ सब ही जान बिजान ॥२३॥
सब आये उस एक मैं, डाल पात फल फूल।
अब कहो पीछे क्या रहा, गह पकड़ा जब मूल ॥२४॥
एक नाम को जान कर, दूजा देय बहाय।
तीरथ ब्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥२५॥

मैं अबला पिउ पिउ करूँ, निरगुन मेरा पीव।
सुन्न सनेही गुरू बिन, और न देखूँ जीव ॥२६॥
कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहिं लेय।
पानी पीवे स्वाँति का, सोभा सागर देय ॥२७॥
ऊँची जात पपीहरा, पिये न नीचा नीर।
कै सुरपति को याँचिई, कै दुख सहै शरीर ॥२८॥
पड़ा पपीहा सुरसरी, लगा बधिक का बान।
मुख मूँदे सुर्त गगन मेँ, निकस गये यौं प्रान ॥२९॥
पपिहा तन को ना तजे, तजे तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कुछ नहीं, पन छूटे है लाज ॥३०॥
चात्रिक सुतहिं पढ़ावही, आन नीर मत लेय।
मम कुल येही रीत है, स्वाँति बूँद चित देय॥३१॥

॥ सूरमा का अङ्ग ॥

गगन दमामा बाजिया, पड़त निशाने चोट।
कायर भागे कुछ नहीं, सूरा भागे खोट ॥१॥
खेत न छाँड़े सूरमा, जूझै दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की, मन मेँ राखे नाहिं ॥२॥
अब तो जूझे ही बने, मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहब को सौंपते, सोच न कीजे सूर ॥३॥
घायल तो घूमत फिरे, राखा रहे न ओट।
जतन करे जीवे नहीं, लगी मरम की चोट ॥४॥
घायल की गति और है, औरन की गति और।
प्रेम बान हिरदे लगा, रहा कबीरा ठौर ॥५॥

सूरे सीस उतारिया, छाँड़ी तन की आस।
आगे से गुरु हरषिआ, आवत देखा दास ॥६॥
कबीर घोड़ा प्रेम का, कोइ चेतन चढ़ असवार।
ज्ञान खड़गले काल सिर, भली मचाई मार ॥७॥
साध सती अरु सूरमा, इन की बात अगाध।
आसा छोड़ैं देह की, तिन मैं अधिका साध ॥८॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय ॥९॥
धड़ सौं सीस उतारिके, डार देहि ज्यौं ढेल।
काहू सूर को सोहसी, यह घर जानेका खेल ॥१०॥
सूरे के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिब्रता के तन नहीं, सुरत बसे पिउ माहिं ॥११॥
दाता के तो धन घना, सूरे के सिर बीस।
पतिब्रता के तन सही, पति राखै जगदीस ॥१२॥
सूर चला संग्राम को, कबहुँ न देवे पीठ।
आगे चल पाछे फिरे, ताको मुख नहिं दीठ ॥१३॥
आब आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निबाहन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥१४॥
नेह निबाहे ही बने, सोचे बने न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजे जान ॥१५॥
लड़ने को सब ही चले, शस्तर बाँध अनेक।
साहब आगे आपने, जूझेगा कोइ एक ॥१६॥
जूझैंगे तब कहैंगे, अब कुछ कहा न जाय।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़े किधौं भगि जाय ॥१७॥

सूरा नाम धराय कर, अब क्या डरपे बीर।
मँड रहना मैदान मैं, सन्मुख सहना तीर ॥१८॥
तीर तुपक से जो लड़े, सो तो सूर न होय।
माया तज भक्ती करे, सूर कहावे सोय ॥१९॥
कबीर तोड़ा मान-गढ़, मारे पाँच गनीम।
सीस नवाया धनी को, साधी बड़ी मुहीम ॥२०॥

॥ मृतक का अंग ॥

मैं मुरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया प्रेम की, जा मैं वस्तु अनेक ॥१॥
ऊँचा तरवर गगन फल, विरला पक्षी खाय।
इस फल को तो सो भखे, जो जीवत ही मरजाय ॥२॥
जब लग आस शरीर की, मिरतक हुआ न जाय।
काया माया मन तजे, चौड़े रहे बजाय ॥३॥
जीवत मिरतक हो रहो, तजो खलक की आस।
रक्षक समरथ सतगुरू, मत दुख पावे दास ॥४॥
कबीर मन मिरतक हुआ, दुरबल भया सरीर।
पीछे लागे हरि फिरैं, कहैं कबीर कबीर ॥५॥
मन को मिरतक देख के, मत माने विस्वास।
साध जहाँ लौं भय करैं, जब लग पिंजर स्वाँस ॥६॥
मैं जानूँ मन मर गया, मर कर हूआ भूत।
मूए पीछे उठ लगा, ऐसा मेरा पूत ॥७॥
सूली ऊपर घर करे, विष का करे अहार।
तिसको काल कहा करे, जोआठपहर हुशियार ॥८॥

मन की मनसा मिट गई , अहं गई सब छूट ।
गगन मँडल में घर किया , काल रहा सिर कूट ॥९॥
जा मरने से जग डरे , मेरे मन आनन्द ।
कब मरिहौं कब पाइहौं , पूरन परमानन्द ॥१०॥
रोड़ा हो रह बाट का , तज आपा अभिमान ।
लोभ मोह तृष्णा तजे , ताहि मिले निज नाम ॥११॥
रोड़ा हुआ तो क्या हुआ , पंथी को दुख देय ।
साधू ऐसा चाहिये , जस पैंड़े की खेह ॥१२॥
खेह भई तो क्या हुआ , उड़ उड़ लागत अंग ।
साधू ऐसा चाहिये , जैसे नीर निपंग ॥१३॥
नीर भया तो क्या हुआ , जो ताता सीरा होय ।
साधू ऐसा चाहिये , जो हरिही जैसा होय ॥१४॥
हरि भयो तो क्या भया , जो करता हरता होय ।
साधू ऐसा चाहिये , जो हरिभज निरमल होय ॥१५॥
निरमल भया तो क्या हुआ , जो निरमल माँगे ठौर ।
मल निरमल से रहित हैं , ते साधू कोइ और ॥१६॥

॥ बिरह का अंग ॥

बिरहिन देय सँदेसरा , सुनो हमारे पीव ।
जल बिन मच्छी क्यों जिये , पानी में का जीव ॥१॥
बिरह तेज तन में तपे , अंग सभी अकुलाय ।
घट सूना जिव पीव में , मौत ढूँढ़ि फिर जाय ॥२॥
बिरह जलंती देखकर , साँईं आये धाय ।
प्रेम बूँद सों छिड़क के , जलती लई बुझाय ॥३॥

कबीर सुन्दर यौं कहे, सुनिये कान्त सुजान।
बेग मिलो तुम आय कर, नहीं तो तजिहौं प्रान ॥४॥
कै विरहिन को मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना, मोपै सहा न जाय ॥५॥
विरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
माँगैं दर्श मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥६॥
यह तन का दिवला करूँ, बाती मेलूँ जीव।
लोहू सींचूं तेल ज्यौं, कब मुख देखूँ पीव ॥७॥
विरहा आया दर्द से, कडुवा लागा काम।
काया लागी काल होय, मीठा लागा नाम ॥८॥
कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर चित्त।
बिन रोये क्यौं पाइये, प्रेम पियारा मित्त ॥९॥
हँस २ कन्त न पाइयाँ, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिलैं, तो कौन दुहागिन होय ॥१०॥
सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे ॥११॥
नाम वियोगी विकल तन, ताहि न चीन्हे कोय।
तम्बोली के पान ज्यौं, दिन दिन पीला होय ॥१२॥
नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोड़ैं तुज्झ।
ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी वेदन मुज्झ ॥१३॥
माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
साहब अजहुँ न आइया, कोइ मन्द हमारा भाग ॥१४॥
विरहा सेती मति अड़े, रे मन मोर सुजान।
हाड़ मास सब खात है, जीवत करे मसान ॥१५॥

विरह प्रबलदल साजके , घेर लियो मोहिं आय ।
नहिं मारे छाँड़े नहीं , तड़फ तड़फ जिय जाय ॥१६॥
पियबिनजिय तरसतरहे , पल पल विरह सताय ।
रैनदिवसमोहिकल नहीं , सिसकसिसकदमजाय ॥१७॥
जो जन विरही नाम के , तिनकी गति है येह ।
देही से उद्यम करैं , सुमिरन करैं बिदेह ॥१८॥
साईं सेवत जल गई , मास न रहिया देह ।
साईं जब लग सेइहौं , यह तन होय न खेह ॥१९॥
निसदिनदाझै विरहिनी , अन्तरगत की लाय ।
दास कबीरा क्यौं बुझै , सतगुर गये लगाय ॥२०॥
पीर पुरानी विरह की , पिंजर पीर न जाय ।
एक पीर है प्रीत की , रही कलेजे छाय ॥२१॥
चोट सतावे विरह की , सब तन जरजर होय ।
मारनहारा जानही , कै जिस लागी सोय ॥२२॥
विरह भुवंगम बस करी , किया कलेजे घाव ।
विरहिन अंग न मोड़ही , ज्यौं भावे त्यौं खाव ॥२३॥
विरहा विरहा मत कहो , विरहा है सुलतान ।
जा घट विरह न संचरे , सो घट जान मसान ॥२४॥
देखत देखत दिन गया , निस भी देखत जाय ।
विरहिन पिय पावे नहीं , बेकल जिय घबराय ॥२५॥
गलूँ तुम्हारे नाम पर , ज्यौं आटे में नोन ।
ऐसा विरहा मेल कर , नित दुख पावे कौन ॥२६॥
सो दिन कैसा होयगा , गुरु गहेंगे बाँह ।
अपना कर बैठावहीं , चरन कँवल की छाँह ॥२७॥

जो जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माहिँ ।
ज्यौँ दरपन की सुन्दरी, किनहूँ पकड़ी नाहिँ ॥२८॥
हिरदे भीतर दौँ जले, धुवाँ न परघट होय ।
जाके लागी सो लखे, कै जिन लाई सोय ॥२९॥
तन भीतर मन मानियाँ, बाहर कहूँ न लाग ।
ज्वालाते फिर जल भया, बुझी जलन्ती आग ॥३०॥

॥ परचे का अंग ॥

पिउ परचे तब जानिये, पिउसे हिलमिल होय ।
पिउकी लाली मुख पड़े, परघट दीसे सोय ॥१॥
लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन मैँ गई, मैँ भी होगइ लाल ॥२॥
जिनपाँवन भुइँ बहु फिरे, घूमे देस बिदेस ।
पिया मिलन जब होइया, आँगन हुआ बिदेस ॥३॥
उलट समाना आप मैँ, प्रगटी जोत अनन्त ।
साहब सेवक एक सँग, खेलैँ सदा बसन्त ॥४॥
हम वासी उस देश के, जहँ सत्तपुरुषकी आन ।
दुख सुख कोइ व्यापे नहीँ, सब दिन एक समान ॥५॥
हम बासी उस देसके, जहँ बारहमास बिलास ।
प्रेम झिरै बिगसे कँवल, तेज पुंज परकास ॥६॥
संशय करूँ न मैँ डरूँ, सब दुख दिये निवार ।
सहज सुन्नमैँ घर किया, पाया नाम अधार ॥७॥
बिन पाँवन का पंथ है, बिन बस्ती का देस ।
बिना देह का पुर्ष है, कहैँ कबीर सँदेस ॥८॥

नोन गला पानी भया, बहुर न भरिहै गौन।
सुरत शब्द मेला भया, काल रहा गहि मौन ॥९॥
हिल मिल खेलूँ शब्द से, अंतर रही न रेख।
समझे का मत एक है, क्या पंडित क्या शेख़ ॥१०॥
अलख लखा लालच लगा, कहत न आवे बैन।
निज मन धसा सरूप मैं, सतगुरु दीन्ही सैन ॥११॥
जो कोइ समझे सैन मैं, तासौं कहिये बैन।
सैन बैन समझे नहीं, तासौं कुछ नहिं कहन ॥१२॥
कहना था सो कह चुके, अब कुछ कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥१३॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोत अनंत।
संसय छूटा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥१४॥
उनमुन लागी सुन्न मैं, निस दिन रहे गलतान।
तन मन की तो सुधि नहीं, पाया पद निरवान ॥१५॥
मेर मिटी मुक्ता भया, पाया नाम निवास।
अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥१६॥
सुरत समानी निरत मैं, अजपा माहीं जाप।
लेख समाना अलेख मैं, आपा माहीं आप ॥१७॥
गुरू मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप।
निस बासर सुख निध लहूँ, अंतर प्रगटे आप ॥१८॥
कौतुक देखा देह बिन, रबि ससि बिना उजास।
साहब सेवा माहिं है, बे परवाही दास ॥१९॥
पवन नहीं पानी नहीं, नहीं धरन आकास।
तहाँ कबीरा सन्त जन, साहब पास ख़वास ॥२०॥

धजा फड़क्के सुन्न में, बाजे अनहद तूर।
तकिया है मैदान में, पहुँचेगा कोइ सूर ॥२१॥
पूरे सौं परिचय भया, दुख सुख मेला धूर।
जम सौं बाकी कट गई, साँईं मिला हजूर ॥२२॥
गुन इन्द्री सहजै गये, सतगुरु करी सहाय।
घट में नाम प्रघट भया, बकबक मरै बलाय ॥२३॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन कठिन है, माँगे सीस कलाल ॥२४॥
राता माता नाम का, पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का, माँगे मुक्ति बलाय ॥२५॥

॥ साध का अङ्ग ॥

कबीर संगत साध की, हरै और की ब्याध।
संगत बुरी असाध की, आठौं पहर उपाध ॥१॥
कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड भोजन मिले, साकित संग न जाय ॥२॥
साध बड़े परमारथी, घन ज्यौं बरसैं जाय।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय ॥३॥
कबीर संगत साध की, ज्यौं गंधी का बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥४॥
रिद्ध सिद्ध माँगूँ नहीं, माँगूँ तुम पै येहि।
निस दिन दरसन साध का, कहैं कबीर मोहिं देहि ॥५॥
निरवैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह।
विषयन सौं न्यारा रहे, साधन का मत येह ॥६॥

सिहौँ के लहँड़े नहीं, हंसौँ की नहिं पाँत।
लालौँ की नहिं बोरियाँ, साध न चलैँ जमात ॥७॥
सिंह साध का एक मत, जीवत ही को खायँ।
भावहीन मिरतक दशा, ता के निकट न जायँ ॥८॥
रवि का तेज घटे नहीं, जो घन जुड़े घमण्ड।
साध बचन पलटे नहीं, पलट जाय ब्रह्मण्ड ॥९॥
साध कहावन कठिन है, ज्यौँ खाँड़े की धार।
डिगमिगे तो गिर पड़े, निःचल उतरे पार ॥१०॥
जौन चाल संसार की, तौन साध की नाहिं।
डिंभ चाल करनी करे, साध कहो मत ताहि ॥११॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सौँ नेह।
कहँ कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥१२॥
जा घट मैँ साँईं बसैँ, सो क्यौँ छाना होय।
जतन जतन कर दाबिये, तउ उजियारा होय ॥१३॥
आवत साध न हरषिया, जात न दीया रोय।
कहँ कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय ॥१४॥
छाजन भोजन प्रीत सौँ, दीजे साध बुलाय।
जीवत जस है जक्त मैँ, अंत परम पद पाय ॥१५॥
साध हमारी आत्मा, हम साधन के जीव।
साधन मैँ हम यौँ रमैँ, ज्यौँ पय मद्धे घीव ॥१६॥
ज्यौँ पय मद्धे घीव है, यौँ रमिया सब ठौर।
कथता श्रोता बहुत हैँ, मथ काढ़ैँ ते और ॥१७॥
साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्रछालूँ अंग।
कहँ कबीर निरमल भया, साधू जन के संग ॥१८॥

अलख पुरुष की आरसी, साधों ही की देह।
लखा जो चाहे अलख को, इनहीं मैं लख लेह ॥१९॥
कोई आवे भाव ले, कोई आवे अभाव।
साध दोऊ को पोषते, भाव न गिनैं अभाव ॥२०॥
कबीर दरसन साध का, करत न कीजे कान।
ज्यौं उद्यम से लक्ष्मी, आलस मन से हान ॥२१॥
कबीर दरसन साध का, साहब आवैं याद।
लेखे मैं सोई घड़ी, बाक़ी के दिन बाद ॥२२॥
खाली साध न भैंटिये, सुन लीजे सब कोय।
कहैं कबीरा भैंट धर, जो तेरे घर होय ॥२३॥
मन मेरा पंछी भया, उड़ कर चढ़ा अकास।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा, साहब संतौं पास ॥२४॥
नहिं सीतल है चन्द्रमा, हिम नाहिं सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥२५॥
रक्त छाँड़ पय को गहे, ज्यौं रे गउ का वच्छ।
औगुन छाँड़े गुन गहे, ऐसा साधू लच्छ ॥२६॥
साधू आवत देख कर, मन मैं धरे मरोर।
सो तो होसी चूहरा*, बसे गाँव के छोर ॥२७॥
साधन के मैं संग हूँ, अंत कहूँ नाहिं जाउँ।
जो मोहिं अरपे प्रीत सौं, साधन मुख होय खाउँ ॥२८॥
साध मिले साहब मिले, अंतर रही न रेख।
मनसा वाचा करमना, साधू साहब एक ॥२९॥
सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।
कहैं कबीर वे कब मिलैं, परम सनेही साध ॥३०॥

* भंगी।

जात न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥३१॥
साध मिलैं यह सब टलैं, काल जाल जमचोट।
सीस नवावत ढह पड़े, अघ पापन की पोट॥३२॥
साध चलत रो दीजिये, कीजे अति सनमान।
कहँ कबीर तिस भेँट धर, अपने वित अनुमान॥३३॥
दरशन कीजे साध का, दिन मैं कइ इकवार।
आसोजा का मैंह ज्यौं, बहुत करे उपकार॥३४॥
कइ इक बेर न कर सके, तो दोय बेर करलेय।
कबीर साधू दरश तैं, काल दगा नहिं देय॥३५॥
दोय वखत ना कर सके, तो दिन मैं करइकबार।
कबीर साधू दरस तैं, उतरे भौजल पार॥३६॥
एक दिना नहिं कर सके, तो दूजे दिन कर लेह।
कबीर साधू दरश तैं, पावे उत्तम देह॥३७॥
दूजे दिन ना कर सके, तीजे दिन कर जाय।
कबीर साधू दरश तैं, मोक्ष मुक्ति फल पाय॥३८॥
तीजे चौथे ना करे, तो वार वार कर जाय।
यामैं विलंब न कीजिये, कहैं कबीर समुझाय॥३९॥
वार वार नहिं कर सके, तो पक्ष पक्ष कर लेय।
कहँ कबीर सो भक्त जन, जनम सुफल कर लेय॥४०॥
पक्ष पक्ष नहिं कर सकें, तो मास मास कर जाय।
यामैं देर न लाइये, कहैं कबीर समुझाय॥४१॥
मास मास नहिं कर सके, तो छठे मास अलवत्त।
यामैं ढील न कीजिये, कहँ कबीर अवगत्त॥४२॥

छठे मास नहिं कर सके, वरस दिना कर लेय।
कहँ कबीर सो भक्त जन, जमै चिनौती देय ॥४३॥
वरस दिना नहिं कर सके, ताके लागे दोष।
कहँ कबीरा जीव सौं, कबहुं न पावे मोष ॥४४॥

॥ शब्द का अंग ॥

शब्दहि मारे मर गये, शब्दहि तजिया राज।
जिन यह शब्द पिछानिया, सरिया तिनका काज ॥१॥
शब्द गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार ॥२॥
शब्द हमारा हम शब्द के, शब्दहिं लेय परक्ख।
जो तू चाहे मुक्ति को, अब मत जाय सरक्क ॥३॥
शब्द हमारा हम शब्द के, शब्द ब्रह्म का कूप।
जो चाहे दीदार को, परखे शब्द का रूप ॥४॥
एक शब्द गुरु देव का, जाका अनंत विचार।
पंडित थाके मुनि जना, वेद न पावे पार ॥५॥
शब्द शब्द सब कोइ कहे, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द औषध करे, एक शब्द करे घाव ॥६॥
शब्द हमारा आदि का, पल पल करिये याद।
अन्त फलेगी माहिं की, बाहर की बरबाद ॥७॥
शब्द बिना सुर्त आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय ॥८॥
एक शब्द सुखरास है, एक शब्द दुखरास।
एक शब्द बन्धन कटैं, एक शब्द गल फाँस ॥९॥

यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं ऊबरे, केता करे उपाय ॥१०॥
सही टेक है तासु की, जाके सतगुरु टेक।
टेक निबाहे देह भर, रहे शब्द मिल एक ॥११॥

॥ सुमिरन का अंग ॥

दुख मेँ सुमिरन सब करे, सुख मेँ करे न कोय।
जो सुख मेँ सुमिरन करे, तो दुख काहे होय ॥१॥
सुख मेँ सुमिरन ना किया, दुख मेँ कीया याद।
कहँ कबीर ता दास की, कौन सुने फ़रियाद ॥२॥
सुख के माथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, जो पल पल नाम जपाय ॥३॥
सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कहँ कबीर सुमिरन किये, साँईं माहिँ समाय ॥४॥
राजा राना राव रंक, बड़ा जो सुमिरे नाम।
कहँ कबीर बड़ाँ बड़ा, जो सुमिरे निःकाम ॥५॥
सुमिरन की सुधि यौँ करो, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरे नहीं, निस दिन आठो जाम ॥६॥
सुमिरन की सुध यौँ करो, ज्यौँ गागर पनिहार।
हाले डोले सुरत मेँ, कहँ कबीर विचार ॥७॥
सुमिरन की सुधि यौँ करो, ज्यौँ सुरही सुत माहिँ।
कहँ कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिँ ॥८॥
सुमिरन की सुधि यौँ करो, जैसे दाम कँगाल।
कहँ कबीर बिसरे नहीं, पल पल लेय सम्हाल ॥९॥

सुमिरन सौँ मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कहैँ कबीर बिसरे नहीं, प्रान तजे तेहि संग ॥१०॥
सुमिरन सौँ मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजे छिन एक मैँ, जरत न मोड़े अंग ॥११॥
सुमिरन सौँ मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारे आपको, होय जाय तेहि रंग ॥१२॥
सुमिरन सौँ मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजे पल बीछुड़े, सत कबीर कह दीन ॥१३॥
सुमिरन सुरत लगाय कर, मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देय कर, अंतर के पट खोल ॥१४॥
माला फेरत मन ख़ुशी, ता ते कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उँजिआरी होय ॥१५॥
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, तू मन का मनका फेर ॥१६॥
कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
मन माला को फेरिये, जा मैँ गाँठ न मेर ॥१७॥
बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महोला ख़लक सौँ, पड़ा धनी सौँ काम ॥१८॥
सहजे ही धुन होत है, हर दम घट के माहिँ।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिँ ॥१९॥
माला तो कर मैँ फिरे, जीभ फिरे मुख माहिँ।
मनुवाँ तो दह दिस फिरे, यह तो सुमिरन नाहिँ ॥२०॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कहैं कबीर इस पलक को, कल्प न पावे कोय ॥२१॥

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय ॥२२॥
जाकी पूंजी स्वाँस है, छिन आवे छिन जाय।
ताको ऐसा चाहिये, रहे नाम लौ लाय ॥२३॥
कहता हूं कह जात हूं, कहा बजाऊं ढोल।
स्वाँसा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥२४॥
ऐसे महँगे मोल का, एक स्वाँस जो जाय।
चौदह लोक पटतर नहीं, काहे धूर मिलाय ॥२५॥
नींद निशानी मीच की, उट्ठ कबीरा जाग।
और रसायन छाँड़ कर, तू नाम रसायन लाग ॥२६॥
कबीर ख़ुद्या* कूकरी, करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डार कर, सुमिरन करो निसंक ॥२७॥
चिन्ता तो सतनाम की, और न चितवे दास।
जो कुछ चितवे नाम बिन, सोई काल की फाँस ॥२८॥
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हज़ार।
आध रती घट संचरे, जारि करे सब छार ॥२९॥
सत्तनाम को सुमिरते, उधरे पतित अनेक।
कहें कबीर नहिं छाँड़िये, सत्त नाम की टेक ॥३०॥
नाम जपत कन्या भली, साकित भला न पूत।
छेरी के गल गलथना, जामें दूध न मूत ॥३१॥
नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ पड़े जो चाम।
कंचन देह किस काम की, जा मुख नाहीं नाम ॥३२॥
जाकी गाँठी नाम है, ताके है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सभी, आठ सिद्धि नौ निद्धि ॥३३॥

* क्षुधा भूख।

मारग चलते जो गिरे, ताको नाहीं दोस।
कहैं कबीर बैठा रहे, ता सिर करड़े कोस ॥३४॥
पाँच सखी पिव पिव करैं, छठा जो सुमिरे मन।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन ॥३५॥
तू तू करता तू भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥३६॥

॥ करनी का अङ्ग ॥

कथनी मीठी खाँड सी, करनी बिष की लोय।
कथनी से करनी करे, तो बिष से अमृत होय ॥१॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
प्रेम चोट जिनके लगी, तिनके विकल शरीर ॥२॥
कथनी बदनी छाँड़ कर, करनी सौं चित लाय।
नर को नीर पिये बिना, कबहूँ प्यास न जाय ॥३॥
करनी बिन कथनी कथे, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यौं भूसत फिरे, सुनी सुनाई बात ॥४॥
करनी बिन कथनी कथे, गुरु पद लहे न सोय।
बातौं के पकवान से, धापा नाहीं कोय ॥५॥
साखी लाय बनाय कर, इत उत अक्षर काट।
कहैं कबीर कबलग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥६॥
पढ़ सुन के समझावई, मन नहिं बाँधे धीर।
रोटी का संशय पड़ा, यौं कह दास कबीर ॥७॥
पानी मिले न आपको, औरन बखूशत छीर।
आपन मन निश्चल नहीं, और बँधावत धीर ॥८॥

करनी करे सो पुत्र हमारा, कथनी कथे सो नाती।
रहनी रहे सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी ॥९॥
ज्ञानी तो पानी भरे, चारौं बेद मजूर।
करनी तो गारा करे, रहनी का घर दूर ॥१०॥
कथनी कर फूला फिरे, मेरे हृदय उचार।
भाव भक्ति समझे नहीं, आधा मूढ़ गँवार ॥११॥
कथनी थोथी जगत मैं, करनी उत्तम सार।
कहँ कबीर करनी सबल, उतरे भौजल पार ॥१२॥
पद जोड़े साखी कहे, साधन पड़ गइ रोस।
काढ़ा जल पीवे नहीं, काढ़ि पियन की हौंस ॥१३॥
करनी कारज मानहीं, कथनी कथे अपार।
इन बातौं क्यौं पाइये, साहब का दीदार ॥१४॥
जैसी मुख सौं नीकसे, तैसी चालैं नाहिं।
मानुषनहींवहस्वानगति, बाँधे जमपुर जाहिं ॥१५॥
कबीर करनी क्या करे, जोगुरुनहिंहोयसहाय।
जेहि जेहि डाली पग धरे, सो सो निव निव जाय ॥१६॥
करनी करनो सब कहैं, करनी माहिं विवेक।
वह करनी बहि जान दे, जो नहिं परखे एक ॥१७॥

॥ बैराग का अंग ॥

घर मैं रहे तो भक्ति कर, नातर करे बैराग।
बैरागी होइ बन्धन करे, ता का बड़ा अभाग ॥१॥

धारैं तो दोऊ भली, गिरही कै बैराग।
गिरही दासातन करे, वैरागी अनुराग ॥२॥
टोटे मैं भक्ती करे, ता का नाम सपूत।
माया धारी मसूख़रे, केतेही गये ऊत ॥३॥
कबीर सब जग निरधना, धनवंता नहिं कोय।
धनवन्ता सो जानिये, सत्तनाम धन होय ॥४॥
खाय पकाय लुटाय दे, करले अपना काम।
चलती बिरियाँ रे नरा, संग न चले छदाम ॥५॥
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति गये, संचत नर्क दुवार ॥६॥
खान खरचन बहु अन्तरा, मन मैं देख बिचार।
एक खवाये साध को, एक मिलाये छार ॥७॥
सौ पापन का मूल है, एक रुपइया रोक।
साधू होइ सँग्रह करे, मिटे न संशय सोक ॥८॥
स्वारथ का सब कोइ सगा, सारा ही जग जान।
बिन स्वारथ आदर करे, सोई सन्त सुजान ॥९॥
मर जाऊं माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवे लाज ॥१०॥
जान बूझ जड़ हो रहे, बल तज निरबल होय।
कहैं कबीर ता दास को, गञ्ज न सक्के कोय ॥११॥

॥ चितावनी का अंग ॥

कबीर काहे गरभिया, काल गहे कर केस।
ना जानूँ कित मारसी, क्या घर क्या परदेस ॥१॥

आज काल के बीच मैं, जंगल होइगा बास ।
ऊपर ऊपर हल फिरैं, ढोर चरैंगे घास ॥२॥
हाड़ जले ज्यौं लाकड़ी, केस जले ज्यौं घास ।
सब जग जलता देखकर, भये कबीर उदास ॥३॥
झूँठे सुख को सुख कहैं, मानत है मन मोद ।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥४॥
कुसल कुसलही पूछते, जग मैं रहा न कोय ।
जरा मुई ना भय मुवा, कुसल कहाँ से होय ॥५॥
पानी केरा बुलबुला, इस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जायँगे, ज्यौं तारा परभात ॥६॥
रात गँवाई सोय कर, दिवस गवायो खाय ।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥७॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत ।
सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥८॥
इस औसर चेत्यो नहीं, पशु ज्यौं पाली देह ।
सत्त शब्द जाना नहीं, अंत पड़ी मुख खेह ॥९॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करे, जब चिड़ियाँ खाया खेत ॥१०॥
आज कहैं मैं काल भजूँगा, काल कहे फिर काल ।
आज काल के करत ही, औसर जासी चाल ॥११॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करे काल का साज ।
काल अचानक मारसी, ज्यौं तीतर को बाज ॥१२॥
पाव पलक तौं दूर है, मोपै कहा न जाय ।
ना जानूँ क्या होयगा, पल के चौथे माँय ॥१३॥

हम जानैं थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यौं का त्यौंही रह गया, पकड़ लेगया काल ॥१४॥
कबीर यह तन जात है, सके तो राख बहोर।
खाली हाथौं वे गये, जिनके लाख करोर ॥१५॥
गाँठी होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानियाँ, लेना होय सो लेह ॥१६॥
देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह।
कहे कबीरा देह तू, जब लग तेरी देह ॥१७॥
देह खेह हो जायगी, फिर कौन कहेगा देह।
निश्चय कर उपकार ही, जीवन का फल येह ॥१८॥
धन दीये धन ना घटे, नदी न घट्टै नीर।
अपनी आँखौं देख लो, यौं कथ कहे कबीर ॥१९॥
आस पास जोधा खड़े, सभी बजावैं गाल।
मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल ॥२०॥
हाँकौं परबत फाटते, समुंदर घूंट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोई गर्ब कराय ॥२१॥
या दुनियाँ में आय के, छाँड़ देय तू ऐंठ।
लेना होय सो लेय ले, उठी जात है पैंठ ॥२२॥
या दुनियाँ दो रोज की, मत कर यासे हेत।
गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत ॥२३॥
तन सराय मन पाहरू, मंसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, सब देखा ठौंक बजाय ॥२४॥
तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान सौं बंध रहा, यह नाहिं अपना होय ॥२५॥

ऐसा संगी कोइ नहीं, जैसे जिवरा देह।
चलती बिरियाँ रे नरा, डार चला कर खेह ॥२६॥
मैं मैं बड़ी बलाय है, सकोतो निकसो भाग।
कहैं कबीर कब लग रहे, रुई लपेटी आग ॥२७॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय ॥२८॥
कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुर न देखो आय ॥२९॥
सातौं शब्द जो बाजते, घर घर होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैठन लागे काग ॥३०॥
ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़।
सुबरन कली ढलावते, गये पलक मैं छोड़ ॥३१॥
पाँच तत्त का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिर फिर रोके ठाम ॥३२॥
कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
दिवस चार का पेखना, बिनस जायगा काल ॥३३॥
कबीर मरैंगे मर जायँगे, कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसायँगे, छोड़ बसंता गाम ॥३४॥
मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कौन।
तन माटी मिल जायगा, ज्यौं आटे मैं नोन ॥३५॥
जन्म मरन दुख याद कर, कूड़े काम निवार।
जिन जिन पंथौं चालना, सोई पंथ सँवार ॥३६॥
कबीर खेत किसान का, मिरगौं खाया झाड़।
खेत बिचारा क्या करे, जो धनी करे नहिँ बाड़ ॥३७॥

जेहि घट प्रीत न प्रेम रस, पुनि रसनानहिंनाम।
ते नर पशु संसार मैं, उपज मरैं बेकाम ॥३८॥
सत्त नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोर।
काया हाँडी काठ की, ना वह चढ़े बहोर ॥३९॥
कहा कियो हम आय के, कहा करैंगे जाय।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाय ॥४०॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, नारि कूकरी होय।
गली गली भूसत फिरे, टूक न डारे कोय ॥४१॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, राजा गदहा होय।
माटी लदे कुम्हार की, घास न डारे कोय ॥४२॥
कबीर यह तन जात है, सकेतो ठौर लगाय।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाय ॥४३॥
काया मंजन क्या करे, कपड़ा धोयम धोय।
उज्जल हुआ न छूटसी, सुख नींदड़ी न सोय ॥४४॥
उज्जल पहिने कापड़ा, पान सुपारी खाय।
कबीर गुरु की भक्ति बिन, बाँधा जमपुर जाय ॥४५॥
मोर तोर की जेवरी, बट बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यौं बँधे, जाके नाम अधार ॥४६॥
जो जाना वा गेह को, सो क्यौं तोड़े मित्त।
जैसे पर घर पाहुना, रहे उठाये चित्त ॥४७॥
दुर्लभ मानुष जनम है, देह न बारम्बार।
तरवर सौं पत्ता झड़े, बहुर न लागे डार ॥४८॥
आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ चले, इक बाँधे जात जँजीर॥४९॥

॥ बिभिचारिन का अङ्ग ॥

नारि कहावे पीव की, रहे और सँग सोय।
जार सदा मन मेँ बसे, खसम खुसी क्योँ होय ॥१॥

सेज़ बिछावे सुन्दरी, अंतर परदा होय।
तन सौँपे मन दे नहीं, सदा दुहागिन सोय ॥२॥

कबीर मन दीया नहीं, तन कर डाला ज़ेर।
अंतरजामी लख गया, बात कहन का फेर ॥३॥

मुख सोँ नाम रटा करे, निस दिन साधू संग।
कहो धौँ कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग ॥४॥

मन दीया कहिँ औरही, तन साधौँ के संग।
कहेँ कबीर कोरी गज़ी, कैसे लागे रंग ॥५॥

रात जगावे राँडिया, गावे बिषम्मा गीत।
मारे लौँदा लापसी, गुरू न आवे चीत ॥६॥

बिभिचारिन बिभचार मेँ, आठ पहर हुशियार।
कहेँ कबीर पतिवर्त बिन, क्योँ रीझे भरतार ॥७॥

बिभिचारिन के वस नहीं, अपनो तन मन होय।
कहेँ कबीर पतिवर्त बिन, नारी गई बिगोय ॥८॥

सत्त नाम को छाँड़ कर, करै और की आस।
कहेँ कबीर ता नारि का, होय नर्क मेँ बास ॥९॥

कामी तरे क्रोधी तरे, लोभी तरे अनंत।
आन उपासी किरतघन, तरे न नाम कहंत ॥१०॥

॥ असाध का अङ्ग ॥

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
विपति पड़े पर छाँड़सी, ज्यौं कँचुरी भुजंग ॥१॥
संगत भया तो क्या हुआ, जो हिरदा भया कठोर।
नौ नेजे पानी चढ़ा, तऊ न भींजी कोर ॥२॥
साधू भया तो क्या हुआ, माला पहरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार ॥३॥
डाढ़ी मूँछ मुड़ाय कर, हूआ घोटम घोट।
मनको क्यौं नहिं मूड़िये, जामैं भरी है खोट ॥४॥
कबीर भेष अतीत का, करे अधिक अपराध।
बाहर दीखे साध गत, माहीं बड़ा असाध ॥५॥
तन को जोगी सब करैं, मन को करे न कोय।
सहजै सब सिध पाइये, जो मन जोगी होय ॥६॥
बाँबी कूटे बावरे, साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसे, सर्प सबन को खाय ॥७॥
मूरख के समुझावने, ज्ञान गाँठ का जाय।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥८॥
दाग जो लागा नीलका, सौ मन साबुन धोय।
कोट जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥९॥

॥ मन का अङ्ग ॥

मन को मारूं पटक के, टूक टूक हो जाय।
विष की क्यारी बोय कर, लुनता क्यौं पछिताय ॥१॥

यह मन फटक पछोर ले, सब आपा मिट जाय।
पिंगल होय पिव पिव करे, ताको काल न खाय ॥२॥
मन पाँचों के बस पड़ा, मन के वस नाहिं पाँच।
जित देखूँ तित दौं लगी, जित मागूँ तित आँच ॥३॥
कबीर बैरी सबल हैं, एक जीव रिपु पाँच।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावैं नाच ॥४॥
कबीर मन तो एक है, भावे तहाँ लगाय।
भावे गुरु की भक्ति कर, भावे बिषय कमाय ॥५॥
मन के मारे बन गये, बन तज बस्ती माहिं।
कहँ कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरे नाहिं ॥६॥
तीन लोक चोरी भई, सबका धन हर लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह ॥७॥
कबीर यह मन मसखरा, कहूँ तो माने रोस।
जा मारग साहब मिलैं, ताहि न चाले कोस ॥८॥
मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोइ साध।
जो माने गुरु बचन को, ता का मता अगाध ॥९॥
जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौड़।
सहजे हीरा नीपजे, जो मन आवै ठौर ॥१०॥
दौड़त दौड़त दौड़िया, जहँ लगमन की दौड़।
दौड़ थकी मन थिर भया, बस्तु ठौर की ठौर ॥११॥
पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुन चुन खात ॥१२॥
कबीर मन परवत हता, अब मैं पाया जान।
टाँकी लागी प्रेम की, निकली कंचन खान ॥१३॥

अगम पंथ मन थिर करे, बुद्धि करे परवेश।
तन मन सबही छाँड़ कर, तब पहुँचे वा देश ॥१४॥
मन ही को परबोधिये, मन ही को उपदेश।
जो यह मन बस आवई, शिष्य होय सब देश ॥१५॥
शिब शाखा बहुतै किया, सतगुरु क्रिया न लिन्त।
चाले थे सतलोक को, बीचहि अटका चित्त ॥१६॥
बात बनाई जग ठग्यो, मन पर बोध्यो नाहिँ।
कबीर यह मन ले गया, लख चौरासी माहिँ ॥१७॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिँ शब्द समाय।
कोटिक गुन सूबा पढ़े, अन्त बिलाई खाय ॥१८॥
अलमस्त फिरे क्या होत है, सुरत लीजिये धोय।
चतुराई नहिँ छूटसी, सुरत शब्द में पोय ॥१९॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
कामदहन मन बस करन, गगन चढ़न मुश्कल ॥२०॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिख लिख भये जो ईंट।
कबीर अन्तर प्रेम की, लागी नेक न छींट ॥२१॥
नाम भजो मन बस करो, यही बात है तन्त।
काहे को पढ़ि पच मरो, कोटिन ज्ञान गिरन्थ ॥२२॥
कबीर आधी साख यह, कोटि ग्रन्थ कर जान।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत शब्द पहिचान ॥२३॥
अपने उरझे उरझियाँ, दीखे सब संसार।
अपने सुरझे सुरझियाँ, यह गुरु ज्ञान विचार ॥२४॥
मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार हैं, सो साधू कोइ एक ॥२५॥

कबीर सीढ़ी साँकरी, चंचल मनुवाँ चोर।
गुन गावे लौलीन होय, कछु इक मन मेँ और ॥२६॥
चंचल मनुवाँ चेत रे, सोवे कहा अजान।
जमघर जम ले जायगा, पड़ा रहेगा म्यान ॥२७॥
कबीर मन मैला भया, यामेँ बहुत बिकार।
यह मन कैसे धोइये, साधो करो विचार ॥२८॥
गुरु धोबी शिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरत सिला पर धोइये, निकसे रंग अपार ॥२९॥
मन गोरख मन गोविँदा, मनही औघड़ सोय।
जो मन राखे जतन कर, आपे करता होय ॥३०॥
पय पानी की प्रीतड़ी, पड़ा जो कपटी नोन।
खंड खंड न्यारे भये, ताहि मिलावे कौन ॥३१॥
मन मोटा मन पातला, मन पानी मन लाय।
मन के जैसी ऊपजै, तैसी ही हो जाय ॥३२॥
मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन गुरु से मिले, तो गुरु मिलैँ निशंक ॥३३॥
कबहूँ मन गगना चढ़े, कबहूँ गिरे पताल।
कबहूँ मन उनमुन लगे, कबहूँ जावे चाल ॥३४॥
मन के बहुते रंग हैँ, छिन छिन बदले सोय।
एक रंग मेँ जो रहे, ऐसा बिरला कोय ॥३५॥
कोट करम पल मेँ करे, यह मन बिषया स्वाद।
सतगुरु शब्द न मानही, जनम गँवावे वाद ॥३६॥
कबीर मन ग़ाफ़िल भया, सुमिरन लागे नाहिँ।
घनी सहेगा त्रासना, जम की दरगह माहिँ ॥३७॥

महमंता मन मार ले, घटही माहीं घेर।
जबही चाले पीठ दे, अंकुस दे दे फेर ॥३८॥
कागज़ केरी नाव री, पानी केरी गंग।
कहँ कबीर कैसे तरूँ, पाँच कुसंगी संग ॥३९॥
इन पाँचौं से बंधिया, फिरफिर धरे शरीर।
जो यह पाँचौं वस करे, सोई लागे तीर ॥४०॥
मनुवाँ तो पंछी भया, उड़कर चला अकास।
ऊपर ही ते गिर पड़ा, मन माया के पास ॥४१॥
मन पंछी तब लग उड़े, बिषय बासना माहिँ।
प्रेम बाज़ की झपट मैं, जब लग आयो नाहिँ ॥४२॥
जहाँ बाज़ बासा करे, पंछी रहे न और।
जा घट प्रेम प्रगट भया, नहीं करम को ठौर ॥४३॥
मन कुंजर महमंत था, फिरता गहिर गँभीर।
दुहरी तिहरी चौहरी, पड़ गई प्रेम ज़ँजीर ॥४४॥
अपने अपने चोर को, सबही डारैं मार।
मेरा चोर मुझे मिले, तो सरबस डारूँ वार ॥४५॥
कबीर यह मन लालची, समझे नहीं गँवार।
भजन करन को आलसी, खाने को हुशियार ॥४६॥
इस तन मैं मन कहँ बसे, निकस जाय केहि ठौर।
गुरुगम होय तो परख ले, नातर कर गुरु और ॥४७॥
नैनौं माहीं मन बसे, निकस जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिर मौर ॥४८॥
यह तो गत है अटपटी, सटपट लखे न कोय।
जो मन की खटपट मिटे, चटपट दर्शन होय ॥४९॥

॥ माया का अङ्ग ॥

माया तौ ठगनी भई, ठगत फिरे सब देश।
जा ठग ने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेश ॥१॥
माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय।
भगता के पाछे लगी, सन्मुख भागे सोय ॥२॥
कबीर माया पापिनी, माँगे मिले न हाथ।
मनौं उतारी झूठ कर, लागी डोले साथ ॥३॥
मोटी माया सब तजैं, झीनी तजी न जाय।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सब को खाय ॥४॥
झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गयो हिराय ॥५॥
कबीर माया जात है, सुनो शब्द निज मोर।
सखियौं के घर साध जन, सूमौं के घर चोर ॥६॥
कबीर माया सूम की, देखन ही का लाड़।
जो वा मैं कौड़ी घटे, साँई तोड़े हाड़ ॥७॥
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्त गये, संचत नर्क दुवार ॥८॥
खान खरचन बहु अंतरा, मन मैं देख विचार।
एक खवावे साध को, एक मिलावे छार ॥९॥
आँधी आई प्रेम की, ढही भरम की भीत।
माया टाटी उड़ गई, लगी नाम सौं प्रीत ॥१०॥
आस आस जग फंदिया, रहे उर्ध लिपटाय।
गुरु आसा पूरन करैं, सकल आस मिट जाय ॥११॥

आसन मारे क्या हुआ, मरी न मन की आस।
तेली केरा बैल ज्यौं, घर ही कोस पचास ॥१२॥
जो तू चाहे मुज्झ को, मति कुछ राखे आस।
मुज्झ सरीखा हो रहे, सब कुछ तेरे पास ॥१३॥
बहुत पसारा जनि करो, कर थोड़े की आस।
बहुत पसारा जिन किया, ते भी गये निरास ॥१४॥
कबीर जोगी जक्त गुरु, तजे जगत की आस।
जो वह चाहे जक्त को, जगत गुरू वह दास ॥१५॥
आसा का ईंधन करो, मंसा करो भभूत।
जोगी फेरी फिर करो, यौं बन आवे सूत ॥१६॥
चौड़े बैठे जाय कर, नाम धरा रनजीत।
साहब न्यारा देखिया, अन्तरगत की प्रीत ॥१७॥
कबीर माया पापिनी, ला लै लाया लोग।
पूरी किनहुँ न भोगिया, इसका यही बिजोग ॥१८॥
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजान।
भागे हू छोड़े नहीं, भर भर मारे बान ॥१९॥
कबीर माया मोहिनी, जैसे मीठी खाँड।
सतगुरु की किरपा हुई, नातर करती भाँड ॥२०॥
कबीर माया मोहिनी, भइ अँधियारी लोय।
जो सोते सो मुस लिये, रहे बस्तु को रोय ॥२१॥
कबीर माया डाकिनी, सब काहू को खाय।
दाँत उखाड़े पापिनी, जो संतौं नेरे जाय ॥२२॥
माया दासी सन्त की, ऊभी देत असीस।
बिलसी अरु लातौं छरी, सुमिर सुमिर जगदीस ॥२३॥

मीठा* सब कोइ खात है, बिष हो लागे धाय ।
नीम† न कोई पीवसी, सर्ब रोग मिट जाय ॥२४॥
माया तरवर त्रिबिध का, सुक्ख दुक्ख संताप ।
सीतलता सपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥२५॥
कबीर जग की क्या कहूँ, भौजल बूड़े दास ।
सत्त नाम पद छोड़ कर, करैं मनुष की आस ॥२६॥
गुरु को छोटा जान कर, दुनियाँ आगे दीन ।
जीवन को राजा कहैं, माया के आधीन ॥२७॥
जिनको साँईं रँग दिया, कभी न होयँ कुरंग ।
दिन दिन बानी अगली, चढ़ै सवाया रंग ॥२८॥
माया दीपक नर पतँग, भ्रम भ्रम माहिं परन्त ।
कोई एक गुरु ज्ञान तेँ, उबरे साधू सन्त ॥२९॥

॥ काम का अंग ॥

चलो चलो सब कोइ कहे, पहुँचे बिरला कोय ।
एक कनिक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥१॥
जग मेँ भक्त कहावई, चुक्कट चून नहिं देय ।
शिष जोरू का हो रहा, नाम गुरू का लेय ॥२॥
पर नारी के राचने, सीधा नरके जाय ।
तिन को जम छाँड़े नहीं, कोटिन करे उपाय ॥३॥
नैनौं काजल देय कर, गाढ़े बाँधे केश ।
हाथौं मिहदी लाय कर, बाघिन खाया देश ॥४॥

* भोग । †.नीम, नामरस ।

नारी की झाँईं पड़त, अन्धे होत भुजंग।
कबीर तिनकी कौन गति, जो नित्त नारि के संग ॥५॥
कामी कुत्ता तीस दिन, अन्तर होय उदास।
कामी नर कुत्ता सदा, छः ऋतु बारह मास ॥६॥
कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥७॥
भक्ति बिगाड़ी कामिया, इन्द्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद ॥८॥
काम काम सब कोइ कहे, काम न चीन्हे कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावे सोय ॥९॥
परनारी पैनी छुरी, मति कोइ करो प्रसंग।
दस मस्तक रावन गये, परनारी के संग ॥१०॥
नारि पराई आपनी, भोगे नरके जाय।
आग आग सब एकसी, हाथ दिये जर जाय ॥११॥
ज़हर पराया आपना, खाये से मर जाय।
अपनी रक्षा ना करे, कहँ कबीर समुझाय ॥१२॥
कूप पराया आपना, गिरे डूब सो जाय।
ऐसा भेद बिचार कर, तू मत ग़ोता खाय ॥१३॥
छुरी पराई आपनी, मारे दर्द जो होय।
बहुविधि कहूँ पुकारकरि, कर छूत्रो मति कोय ॥१४॥
कामी कबहुँ न गुरु भजे, मिटे न संशय मूल।
और गुनह सब बख़ुशिहौं, कामी डाल न मूल ॥१५॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥१६॥

जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनौं कबहूँ ना मिलैं, रवि रजनी इक ठाम ॥१७॥
कामिन काली नागिनी, तीनौं लोक मँझार।
नाम सनेही ऊबरे, विषया खाये झार ॥१८॥
कामिनि सुन्दर सर्पिनी, जो छेड़ै तेहि खाय।
जो गुरु चरनन राचिया, तिनके निकट न जाय ॥१९॥
नारी निरख न देखिये, निरख न कीजै दौर।
देखेही तें बिष चढ़े, मन आवे कुछ और ॥२०॥
जो कबहूँ कर देखिये, बीर बहन के भाय।
आठ पहर अलगा रहे, ताको काल न खाय ॥२१॥
सर्ब सोने की सुन्दरी, आवे बास सुबास।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठे पास ॥२२॥
परनारी के राचने, औगुन है गुन नाहिं।
खार समुन्दर माछली, केती बह बह जाहिं ॥२३॥
नारि पुर्ष सब ही सुनो, यह सतगुरु की साख।
बिष फल फले अनेक हैं, मत कोइ देखो चाख ॥२४॥
नारि नसावे तीन गुन, जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यानमैं, बैठ न सक्के कोय ॥२५॥
गाय रोय हँस खेल के, हरत सबन के प्रान।
कहँ कबीर या घात को, समझैं सन्त सुजान ॥२६॥
नारी नदी अथाह जल, बूड़ मुवा संसार।
ऐसा साधू ना मिला, जा सँग उतरूँ पार ॥२७॥
गाय भैंस घोड़ी गधी, नारि नाम है तास।
ज़ा मन्दिर मैं यह बसैं, तहाँ न कीजे बास ॥२८॥

एक कनक अरु कामिनी, बिष फल किये उपाय।
देखेही तँ बिष चढ़े, चाखत ही मर जाय ॥२९॥
एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर।
गुरु बिच डारे अन्तरा, जम देसी मुख धूर ॥३०॥
रज बीरज की कोठरी, तापर साजो रूप।
सत्तनाम बिन बूड़सी, कनक कामिनी कूप ॥३१॥
कामी तो निर्भय भया, करे न कबहूँ संक।
इन्द्रिन के रे बस बड़ा, भोगे नर्क निसंक ॥३२॥
कहता हूँ कह जात हूँ, समझे नहीं गंवार।
वैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥३३॥
नारी तो हम भी करी, जाना नहीं बिचार।
जब जाना तब परिहरी, नारी बड़ी बिकार ॥३४॥
छोटी मोटी कामिनी, सब ही विषकी बेल।
वैरी मारे दाँव से, यह मारे हँस खेल ॥३५॥

॥ मान का अङ्ग ॥

कंचन तजना सहज है, सहज तृया का नेह।
मान वड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह ॥१॥
माया तजी तो क्या हुआ, मान तजा नहिँ जाय।
मान वड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥२॥
काला मुख कर मान का, आदर लावे आग।
मान वड़ाई छाँड़ कर, रहे नाम लौ लाग ॥३॥
मान वड़ाई कूकरी, धरमराय दरबार।
दीन लकुटिया बाहरा, सब जग खायो फाड़ ॥४॥

अहं अग्नि हिरदे जरे, गुरु से चाहे मान।
तिनको जम न्योता दियो, हो हमरे मेहमान ॥५॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे बड़ी खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥६॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संशय तहँ सोग।
कहँ कबीर यह क्यौं मिटैं, चारो दीरघ रोग ॥७॥
ऊँचे पानी ना टिके, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भर पिये, ऊँच पियासा जाय ॥८॥
लेने को सतनाम है, देने को अनदान।
तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान ॥९॥

॥ सील का अङ्ग ॥

घायल ऊपर घाव ले, टोटे त्यागी कोय।
भर जोबन मैं सीलवन्त, कोइविरलाहोयतोहोय ॥१॥
ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवन्त कोइ एक ॥२॥
सुखका सागर सील है, कोई न पावे थाह।
शब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं साह ॥३॥
विषय पियारे प्रीत सौं, तबलगगुरुमुखनाहिं।
अब अन्तर सतगुरु बसे, विषया से रुच नाहिं ॥४॥

॥ सन्तोष का अङ्ग ॥

सांध सन्तोषी सर्बदा, निरमल जिनके वैन।
तिनके दरशन परस तैं, जिव उपजे सुख चैन ॥१॥

चाह मिटी चिन्ता गई, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सोई शाहनशाह ॥२॥
आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
यह तीनौं तबही गये, जबहि कहा कछु देह ॥३॥
माँगन गये सो मर रहे, मरे सो माँगन जाहिँ।
तिन से पहिले वे मरे, जो होत करत हैं नाहिँ ॥४॥
माँगन मरन समान है, मति माँगे कोइ भीख।
माँगन से मरना भला, यह सतगुरुकी सीख ॥५॥
अनमाँगा तो अति भला, माँग लिया नहिं दोष।
उदर समाना माँग ले, निश्चय पावे मोष ॥६॥
उत्तम भीख है अजगरी, सुन लीजै निज बैन।
कहैं कबीर ताके गहे, महा परम सुख चैन ॥७॥
गोधन गजधन बाजधन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोप धन, सब धन धूल समान ॥८॥

॥ क्रोध का अंग ॥

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिस लागी आग।
भीतर रहे सो जल मुए, साधू उबरे भाग ॥१॥
क्रोध अग्नि घर घर बढ़ी, जले सकल संसार।
दीन लीन जिन भक्ति में, तिनके निकट उबार ॥२॥
कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया अहंकार ॥३॥
जक्त माहिं धोखा घना, अहं क्रोध औ काल।
पार पहूँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥४॥

गार अँगारा क्रोध झल, निन्दा धूवाँ होय।
इन तीनौं को परिहरे, साध कहावे सोय ॥५॥
आवत गाली एक है, उलटत होय अनेक।
कहैं कबीर न उलटिये, वाही एक की एक ॥६॥
गाली सौं सब ऊपजे, कलह कष्ट और मीच।
हार चले सो संत है, लाग मरे सो नीच ॥७॥
जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डाल दे, दया करे सब कोय ॥८॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे, आपौ सीतल होय ॥९॥
बोली तो अनमोल है, जो कोइ जाने बोल।
हिये तराजू तोल कर, तब मुख बाहर खोल ॥१०॥
कुबुध कमानी चढ़ रही, कुटिल बचनका तीर।
भर भर मारे कान मैं, साले सकल शरीर ॥११॥
कुटिल बचन सब से बुरा, जार करे तन छार।
साध बचन जल रूप है, बरसे अमृत धार ॥१२॥
चोट सुहेली सेल की, पड़ते लेय उसास।
चोट सहारे शब्द की, तास गुरू मैं दास ॥१३॥
खोद खाद धरती सहे, काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहे, और से सहा न जाय ॥१४॥
सहज तराजू आन कर, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस, जो कोइ जाने बोल ॥१५॥
शब्द बराबर धन नहीं, जो कोइ जाने बोल।
हीरा तो दामौं मिले, शब्दका मोल न तोल ॥१६॥

सीतल शब्द उचारिये, अहं आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, दुशमन भी तुझ माहिं ॥१७॥

॥ छमा का अङ्ग ॥

वाद विवादे विष घना, बोले बहुत उपाध।
मौन गहे सब की सहै, सुमिरे नाम अगाध ॥१॥

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥२॥

॥ सांच का अङ्ग ॥

साँई आगे साँच हो, साँई साँच सुहाय।
भावे लम्बे केस कर, भावे घोट मुड़ाय ॥१॥

साँचे कोइ न पतीजई, झूँठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरे, मदिरा बैठ विकाय ॥२॥

झूँठे से झूँठा मिले, अधिका बढ़े सनेह।
झूँठे को साँचा मिले, तड़ दे टूटे नेह ॥३॥

साधू ऐसा चाहिये, साँची कहे बनाय।
कै टूटे कै फिर जुड़े, बिन कहे भरम न जाय ॥४॥

साँचे श्राप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिले, साँचे माहिं समाय ॥५॥

जाकी साँची सुरत है, ता का साँचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घड़ी, साँई सेती मेल ॥६॥

प्रेम प्रीत का चोलना, पहिर कबीरा नाच।
तन मन तापर वारिहौं, जो कोइ बोलै साँच ॥७॥
साँच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहे, कंचन किस विधि होय ॥८॥
कबीर लज्जा लोक की, बोले नाहीं साँच।
जान बूझ कंचन तजे, क्यौं तू पकड़े काँच ॥९॥
जो तू साँचा बानियाँ, साँची हाट लगाय।
अन्दर झाड़ू देय कर, कूड़ा दूर बहाय ॥१०॥

॥ निन्दा का अङ्ग ॥

दोष पराया देख कर, चले हसन्त हसन्त।
अपना याद न आवई, जाका आदि न अन्त ॥१॥
तिनका कबहुं न निन्दिये, जो पावन तल होय।
कबहूं उड़ आँखौं पड़े, पीर घनेरी होय ॥२॥
निन्दक से कुत्ता भला, जो हट कर माँड़े रार।
कुत्ता से क्रोधी बुरा, जो गुरू दिवावे गार ॥३॥
निन्दक नेरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निरमल करे सुभाय ॥४॥
निन्दक दूर न कीजिये, कीजे आदर मान।
निरमल तन मन सब करे, बके आनही आन ॥५॥
कबीर निन्दक मत मरो, जीवो आद जुगाद।
हम तो सतगुरु पाइया, निन्दक के परसाद ॥६॥
साकित सूकर कूकरा, इनकी मति है एक।
कोटि जतन परबोधिये, तऊ न छाँड़े टेक ॥७॥

कबीर मेरे साध की, निन्दा करो न कोय।
जो पै चन्द कलंक है, तउ उजियारा होय ॥८॥
साती सायर मैं फिरा, जंबुदीप दे पीठ।
निन्दा पराई ना करे, सो कोइ बिरला दीठ ॥९॥

॥ विनती का अङ्ग ॥

औगुनहारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सतगुरू, ताहि लगावैं ठौर ॥१॥
तुम तो समरथ साइयाँ, दृढ़ कर पकड़ो बाँह।
धुर ही ले पहुँचाइयो, जनि छाँड़ो मग माँह ॥२॥
सुरत करो मेरे साइयाँ, हम हैं भौजल माँह।
आपे ही बह जायँगे, जो नहिं पकड़ो बाँह ॥३॥
घट समुद्र लख ना पड़े, उट्ठैं लहर अपार।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन उतारे पार ॥४॥
सब धरती कागज करूँ, लेखन सब बनराय।
सात सिंध की मस करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥५॥
मुझ औगुन है तुज्झ गुन, तुझ गुन औगुन मुज्झ।
जो मैं बिसरूँ तुज्झ को, तुम मत बिसरो मुंज्झ ॥६॥
जो मैं भूल बिगाड़िया, ना कर मैला चित्त।
साहब गरुवा लोड़िये, नफ़र बिगाड़े नित्त ॥७॥
औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावे बन्दा बख़शिये, भावे गरदन मार ॥७॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो सम्हार ॥९॥

मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन मैं ढंग।
ना जानूँ उस पीव से, क्यौंकर रहसी रंग ॥१०॥

क्या मुख ले बिनती करूँ, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत औगुन करूँ, कैसे भाऊँ तोहि ॥११॥

भक्ति दान मोहिं दीजिये, गुरु देवन के देव।
और नहीं कुछ चाहिये, निस दिन तेरी सेव ॥१२॥

जो अब के स्वामी मिलैं, सब दुख आखूँ रोय।
चरनौं ऊपर सीस धर, कहूँ जो कहना होय ॥१३॥

॥ तीरथ का अङ्ग ॥

तीरथ ब्रत कर जग मुवा, ठण्डे पानी न्हाय।
सत्तनाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय ॥१॥

तीरथ चाले दो जनाँ, चित चंचल मन चोर।
एको पाप न ऊतरा, लाये मन दस और ॥२॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैं मैल समाय।
मीन सदा जल मैं रहे, धोये बास न जाय ॥३॥

कोटि कोटि तीरथ करे, कोटि कोटि करे धाम।
जब लग साध न सेइहै, तब लग काँचा काम ॥४॥

॥ मूरत का अङ्ग ॥

पाहन केरी पूतरी, कर पूजे करतार।
याहि भरोसे मत रहो, बूड़ो काली धार ॥१॥

पाहन को क्या पूजिये, जो जन्म न देय जवाब।
अन्धा नर आसामुखी, यौंहीं होय ख़राब ॥२॥
पाहन पानी मत पूजिये, सेवा जासी बाद।
सेवा कीजै साध की, सत्तनाम कर याद ॥३॥
कबीर दुनिया देहरे, सीस नवावन जाय।
हिरदे माहीं गुरु बसैं, ताही सौं लौ लाय ॥४॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया काशी जान।
दसौं द्वार का देहरा, ता मैं जोत पिछान ॥५॥

॥ अहार का अङ्ग ॥

खट्टा मीठा चरपरा, जिभ्या सब रस लेय।
चोर अरु कुतिया मिल गई, पहरा किसका देय ॥१॥
अहार करे मन भावता, जिभ्या केरे स्वाद।
नाक तलक पूरन भरे, को कहिये परशाद ॥२॥
रूखा सूखा खाय कर, ठण्ढा पानी पीव।
देख पराई चूपड़ी, क्यौं ललचावे जीव ॥३॥
आधी अरु रूखी भली, सारी सो संताप।
जो चाहेगा चूपड़ी, तो बहुत करेगा पाप ॥४॥
कबीर साँईं मुझको, रूखी रोटी देह।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ, रूखी छीन न लेह ॥५॥
तिल भर मच्छी खाय कर, कोटि गऊ दे दान।
काशी करवट ले मरे, तौ भी नर्क निदान ॥६॥
ख़ुश खाना है खीचड़ी, माहिं पड़े टुक नोन।
मास पराया खाय कर, गला कटावे कौन ॥७॥

कहता हूँ कह जात हूँ, कहा जो मान हमार।
जा का गल तुम काटिहो, सो काटिहै तुम्हार ॥८॥

॥ निद्रा का अङ्ग ॥

कबीर सोता क्या करे, सोये होय अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥१॥
कबीर सोता क्या करे, उट्ठ न रोवे दुक्ख।
जाका बासा घोर मैं, सो क्यौं सोवे सुक्ख ॥२॥
कबीर सोता क्या करे, जागन की कर चौंप।
यह दम हीरालाल है, गिन गिन गुरुको सौंप ॥३॥
सोता साध जगाइये, करै नाम का जाप।
यह तीनौं सोते भले, साकित सिंह और साँप ॥४॥
जागन से सोवन भला, जो कोइ जाने सोय।
अन्तर लौ लागी रहे, सहजै सुमिरन होय ॥५॥
जागन मैं सोवन करे, सोवन मैं लौ लाय।
सुरत डोर लागी रहे, तार टूट नहिं जाय ॥६॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागे कोय।
कै जागे बिषया भरा, कै दास बन्दगी सोय ॥७॥

॥ नशे का अङ्ग ॥

भाँग भखे बल बुद्धि को, आफू अहमक सोय।
दो अमलन औगुन कहा, ज्ञानवन्त नर जोय ॥१॥
औगुन कहूँ शराब का, ज्ञानवन्त सुन लेह।
मानुष से पशुवा करे, द्रब्य गाँठ का देह ॥२॥

॥ व्यापकता का अङ्ग ॥

ज्यौं नैनन मैं पूतली, त्यौं खालिक़ घट माहिँ।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिँ ॥१॥
ज्यौं तिल माहीं तेल है, ज्यौं चक़मक मैं आग।
तेरा प्रीतम तुज्झ मैं, जाग सके तो जाग ॥२॥
पुहप मध्य ज्यौं बास है, व्याप रहा सब माहिँ।
सन्तौं माहीं पाइये, और कहूँ कछु नाहिँ ॥३॥
जा कारन जग ढूँढिया, सो तो घट ही माहिँ।
परदा दीया भरम का, ता तैं सूझै नाहिँ ॥४॥

॥ विवेक का अङ्ग ॥

फूटी आँख विवेक की, लखे न संत असंत।
जाके सँग दस बीस हैं, ता का नाम महंत ॥१॥
साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, वह माथे की मौर ॥२॥
जब लग नहीं विवेक मन, तब लग लगे न तीर।
भवसागर नाहीं तरे, सतगुरु कहैं कबीर ॥३॥
गुरुपशु, नरपशु त्रियापशु, वेदपशू संसार।
मानुष सोई जानिये, जाहि विवेक विचार ॥४॥

॥ नाम का अंग ॥

नाम रतन धन पाय कर, गाँठी बाँध न खोल।
नाहीं पन नहिँ पारखी, नहिँ गाहक नहिँ मोल ॥१॥

नाम रतन धन मुज्झ मैं, खान खुली घट माहिँ ।
सँत मँत ही देत हूँ, गाहक कोई नाहिँ ॥२॥
जब गुनका गाहक मिले, तब गुन लाख बिकाय ।
जब गुनका गाहक नहीं, कौड़ी बदले जाय ॥३॥
हीरा परखे जौहरी, शब्द को परखे साध ।
जो कोइ परखे साध को, ता का मता अगाध ॥४॥
सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय ।
रंचक घट मैं संचरे, सब तन कंचन होय ॥५॥
गावनियाँ के मुख बसूँ, अरु श्रोता के कान ।
ज्ञानी के हिरदे बसूँ, भेदी का मैं प्रान ॥६॥
जबही नाम हृदे धरा, भया पाप का नास ।
मानो चिनगी आग की, पड़ी पुरानी घास ॥७॥

॥ उपदेश का अङ्ग ॥

लेना होय सो लेइ लो, कही सुनी मत मान ।
कही सुनी जुग जुग चली, आवागवन बँधान ॥१॥
स्वामी हो संग्रह करे, दूजे दिन को नीर ।
तरे न तारे और को, यौं कथ कहैं कबीर ॥१॥
कथा कीर्तन कलि विषे, भवसागर की नाव ।
कहैं कबीर जग तरन को, नाहीं और उपाव ॥३॥
कथा कीर्तन करन को, जाके निस दिन रीत ।
कहैं कबीर वा दास से, निश्चय कीजे प्रीत ॥४॥
कथा कीर्तन छोड़ कर, करे जो और उपाय ।
कहैं कबीर ता साध के, पास कोई मत जाय ॥५॥

कथा कीर्तन रात दिन, जाके उद्दिम येह।
कहैं कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥६॥
कथा करो करतार की, निस दिन साँझ सवार।
काम कथा को परिहरो, कहैं कबीर विचार ॥७॥
काम कथा सुनिये नहीं, सुनकर उपजै काम।
कहैं कबीर विचार कर, बिसर जात है नाम ॥८॥
वंजारे का बैल ज्यौं, टाँडा उतरा आय।
एकन का दूना भया, इक चाले मूल गँवाय ॥९॥

॥ सूक्ष्म मारग का अङ्ग ॥

उत तैं कोइ न आइया, जासे पूछूँ धाय।
इत तैं सब कोइ जात हैं, भार लदाय लदाय ॥१॥
उत तैं सतगुरु आइया, जिनकी मत बुधि धीर।
भवसागर के जीव को, खेय लगावैं तीर ॥२॥
गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरा, तहाँ बुलावे यार ॥३॥
कौन सुरत ले आवई, कौन सुरत ले जाय।
कौन सुरत है इस्थिरी, सो गुरु देव बताय ॥४॥
बास सुरत ले आवई, शब्द सुरत ले जाय।
परचे सुरत है इस्थिरी, सो गुरु दई बताय ॥५॥
जा कारन मैं जात था, सो तो मिलिया आय।
साँईं तो सन्मुख भया, लाग कबीरा पाँय ॥६॥
जो आवे तो जाय नहिं, जाय तो आवे नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समुझ लेहु मन माहिं ॥७॥

कबीर भेदी भक्त सौं, मेरा मन पतियाय।
सेरी पावे शब्द की, निरभय आवे जाय ॥८॥
भेदी जाने सर्ब गुन, अनभेदी क्या जान।
कै जाने गुरु पारखी, कै जिस लागा बान ॥९॥
भेद ज्ञान तौ लौं भलो, जौ लौं मुक्ति न होय।
परम जोत परघट भई, तब नाहिं बिकलप कोय ॥१०॥

॥ मिश्रित अङ्ग ॥

जाके मन बिस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झकझोलई, तऊ न हो चित भंग ॥१॥
जाको राखे साँइयाँ, मारि न सक्के कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय ॥२॥
लखनहार ने लख लिया, जाको है गुरु ज्ञान।
शब्द सुरत के अन्तरे, अलख पुरुष निरबान ॥३॥
यार बुलावे भाव से, मोपै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लाग न सक्कूँ पाँय ॥४॥
जो कुछ आवे सहज मैं, सोई मीठा जान।
कड़ुआ लागा नीम सा, जामैं ऐंचा तान ॥५॥
करता दीखे कीरतन, ऊँचा करके तुण्ड।
जाने बूझे कुछ नहीं, यौंहीं आधा रुण्ड ॥६॥
राज दुवारे साध जन, तीन बस्तु को जाय।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥७॥
पंडित केरी पोथियाँ, ज्यौं तीतर का ज्ञान।
औरन सगुन बतावई, आपा फन्द न जान ॥८॥

सँसकिरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सहित है, सह मत गहिर गँभीर ॥९॥
नहिँ कागद नहिँ लेखनी, निःअक्षर हो जोय।
पुस्तक छाँड़ जो बाँचई, पंडित कहिये सोय ॥१०॥
गिरिये पर्वत सिखर से, पड़िये धरन मँझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़े काली धार ॥११॥
प्रेम प्रीत से जो मिले, तासौँ मिलिये धाय।
अन्तर राखे जो मिले, तासौँ मिले बलाय ॥१२॥
हाथी अटका कीच मैँ, काढ़े कोइ समरत्थ।
कै निकसे बल आपने, कै धनी पसारे हत्थ ॥१३॥
भूप दुखी अवधू दुखी, दुखी रंक बिपरीत।
कहैँ कबीर यह सब दुखी, सुखी संत मन जीत ॥१४॥
हिरदे माहीं आरसी, मुख देखो नहिँ जाय।
मुख तो जब ही देखिये, जो दिल की दुबिधा जाय ॥१५॥
नवन नवन बहु अन्तरा, नवन नवन बहु बान।
यह तीनौँ बहुते नवें, चीता चोर कमान ॥१६॥
एक अचंभा देखिया, हीरा हाट बिकाय।
परखन हारा बाहरा, कौड़ी बदले जाय ॥१७॥
हीरा गुरु का शब्द है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भर रहा, ऐसा अगम अलेख ॥१८॥
आँखौँ देखा घी भला, मुख मेला नहिँ तेल।
साधू सौँ झगड़ा भला, नहिँ साकित से मेल ॥१९॥
दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथे बेहद्द।
ते नर नरके जायेंगे, सुन सुन साखी शब्द ॥२०॥

जूवा चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस परनार।
जो चाहे दीदार को, एती बस्तु निवार ॥२१॥
नाम बिना बेकाम हैं, छपयन भोग बिलास।
क्या इन्द्रासन बैठनो, क्या बैकुण्ठ निवास ॥२२॥
कबीर सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफ़िर बेपीर ॥२३॥
तरवर सरवर सन्त जन, चौथे बरसे मैंह।
परमारथ के कारने, चारौं धारैं देह ॥२४॥
उदर भरन के कारने, जग जाँच्यो निस जाम।
स्वामी पन सिर पर चढ़ो, सरो न एको काम ॥२५॥
कलिका स्वामी लोभिया, मनसा रहा बंधाय।
रुपया देवे ब्याज पर, लेखा करता जाय ॥२६॥
कबीर कलजुग कठिन है, साध न माने कोय।
कामी क्रोधी मसखरा, तिनका आदर होय ॥२७॥
सतगुरु सँग साँची कथा, कोई न सुनई कान।
कलजुग पूजा डिंभ की, बाज़ारी को मान ॥२८॥
पदगाये मन हरषिया, साखी कहे अनन्द।
सत्तनाम नहिं जानियाँ, गल मैं पड़ गया फन्द ॥२९॥
जाके हिरदे गुरु नहीं, सिख साषा की भूख।
सो नर ऐसा सूखसी, ज्यौं बन दाझा रूख ॥३०॥
पंडित और मशालची, दोनौं सूझे नाहिं।
औरन को करैं चाँदना, आप अँधेरे माहिं ॥३१॥
नाचे गाये पद कहे, नाहीं गुरु से हेत।
कहैं कबीर क्यौं ऊपजे, बीज बिहूना खेत ॥३२॥

पढ़ा गुना सीखा सभी , मिटी न संशय सूल ।
कहैं कबीर कासौं कहूँ , यह सब दुखका मूल ॥३३॥
कबीर ब्राह्मन की कथा , सो चोरन की नाव ।
सब अंधे मिल बैठिया , भावे तहँ ले जाव ॥३४॥
रचनहार को चीन्ह ले , खाने को क्या रोय ।
दिल मंदिर मैं पैठ कर , तान पिछौरा सोय ॥३५॥
सब से भली मधूकरी , भाँत भाँत का नाज ।
दावा काहू का नहीं , बिना बिलायत राज ॥३६॥
सात दीप नौ खण्ड मैं , तीन लोक ब्रह्मण्ड ।
कहैं कबीर सब को लगे, देह धरे का दण्ड ॥३७॥
भौसागर जल विष भरा , मन नहिं बाँधे धीर ।
शब्द सनेही पिव मिला , उतरा पार कबीर ॥३८॥
सुपने मैं साँईं मिले , सोवत लिया जगाय ।
आँख न खोलूँ डरपता , मत सुपना हो जाय ॥३९॥
हंसा बगला एक रँग , मानसरोवर माहिं ।
बगला ढूँढ़े माछली , हंसा मोती खाहिं ॥४०॥
तन संदूक मन रतन है , चुपके दे हठ ताल ।
गाहक बिना न खोलिये , पूँजी शब्द रसाल ॥४१॥
पावक रूपी शब्द है , सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागे नहीं , ताते बुझ बुझ जाय ॥४२॥
प्रीत बहुत संसार मैं , नाना विधि की सोय ।
उत्तम प्रीत सो जानिये , सतगुरु से जो होय ॥४३॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं , तुम मोहिं चितवत नाहिं ।
सुमिरन मन की प्रीत है , सो मन तुमहीं माहिं ॥४४॥

सोऊं तो सुपने मिलूँ, जागूँ तो मन माहिँ।
लोचन राते शुभ घड़ी, बिसरत कवहूँ नाहिँ ॥४५॥
समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम विकार।
जहँ देखूँ तहँ एक ही, साहब का दीदार ॥४६॥
तरवर तास विलंबिये, बारह मास फलंत।
सीतल छाया सघन फल, पंछी केल करन्त ॥४७॥
खुल खेलो संसार मेँ, बाँध न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करे, जो सिर बोझ न होय ॥४८॥
घाट जगाती धर्मराय, सबका झारा लेय।
सत्तनाम जाने बिना, उलट नर्क मेँ देय ॥४९॥
ज्ञानी तो नीडर भया, माने नाहीं सङ्क।
इन्द्रिन के रे बस पड़ा, भुगते नर्क निशङ्क ॥५०॥
ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता।
ताते संसारी भला, जो सदा रहे डरता ॥५१॥
मोमेँ इतनी शक्ति कहँ, गाऊँ गला पसार।
बन्दे को इतनी घनी, पड़ा रहे दरबार ॥५२॥

॥ तुलसी साहब के दोहे ॥

सुरत सैल असमान की, लख पावे कोइ सन्त।
तुलसी जग माने नहीं, अति उतंग पिय पंथ ॥१॥
दिना चार का खेल है, झूठा जक्त पसार।
जिन बिचार पतिना लखा, बूड़े भौजल धार ॥२॥
एक भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाँति सलिल गुरु चरनहिँ, चात्रिक तुलसीदास ॥३॥

तुलसी ऐसी प्रीत कर, जैसे चन्द चकोर।
चौंच झुकी गरदन गली, चितवत वाही ओर ॥४॥
उत्तम और चंडाल घर, जहँ दीपक उजियार।
तुलसी मते पतंग के, सभी जोत इकसार ॥५॥
तुलसी कँवलन जल बसे, रवि ससि बसे अकास।
जो जाके मन मैं बसे, सो ताही के पास ॥६॥
मकरी उतरे तार से, पुन गहि चढ़तजो तार।
जा का जासौं मन रुच्यो, पहुँचतलगे न बार ॥७॥
तुलसी या संसार मैं, पाँच रतन हैं सार।
साध-संग सतगुरु-सरन, दया दीन-उपकार ॥८॥
नीच नीच सब तर गये, संत चरन लौलीन।
जातहि के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन ॥९॥
जैसो तैसो पातकी, आवे गुरु की ओट।
गाँठी बाँधी संत से, ना परखो खरखोट ॥१०॥
सोना काई नहिं लगे, लोहा घुन नहिं खाय।
बुरा भला जो गुरु भगत, कबहूँ नर्क न जाय ॥११॥
दर दरबारी साध हैं, उनसे सब कुछ होय।
तुर्त मिलावैं नाम से, उन्हें मिले जो कोय ॥१२॥
कोई तो तन मन दुखी, कोई चित्त उदास।
एक एक दुख सबन को, सुखी सन्त का दास ॥१३॥
बड़े बड़ाई पाय कर, रोम रोम अहङ्कार।
सतगुरु के परचे बिना, चारौं बरन चमार ॥१४॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन मैं खान।
तुलसी पंडित मूरखो, दोनौं एक समान ॥१५॥

मन राखत बैराग मैँ, घर मैँ राखत राँड।
तुलसी किड़वा नीम का, चाखन चाहत खाँड ॥१६॥
अर्ब खर्ब लौँ लच्छमी, उदय अस्त लौँ राज।
तुलसी जो निज मरन है, तो आवे केहि काज ॥१७॥
पानी बाढ़ो नाव मैँ, घर मैँ बाढ़ो दाम।
दोनौँ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥१८॥
चार अठारह नौ पढ़े, षट पढ़ि खोया मूल।
सुरत शब्द चीन्हे बिना, ज्यौँ पंछी चंडूल ॥१९॥
पढ़ पढ़के सब जग मुवा, पण्डित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥२०॥
लिख २ के सब जंग लिख्यो, पढ़ पढ़के कहा कीन्ह।
बढ़ बढ़के घट घट गये, तुलसी सन्त न चीन्ह ॥२१॥
तुलसी सम्पत के सखा, पड़त विपत मैँ चीन्ह।
सज्जन कंचन कसन को, विपत्त कसौटी कीन्ह ॥२२॥
मन थिर कर जाने नहीँ, ब्रह्म कहँ गुहराय।
चौरासी के फंद मैँ, फेर पड़ेँगे आय ॥२३॥
तुलसी मैँ तू जो तजै, भजै दीन गत सोय।
गुरू नवै जो शिष्य को, साध कहावै सोये ॥२४॥

॥ दादू साहब के दोहे ॥

साँईँ सत संतोष दे, भाव भक्ति बिश्वास।
सिदक़ सबूरी साँच दे, माँगै दादू दास ॥१॥
जीवत माँटी हो रहो, साँईँ सनमुख होय।
दादू पहले मर रहो, पीछे मरे सब कोय ॥२॥

दादू दावा दूर कर, निरदावे दिन काट ।
केते सौदा कर गये, पंसारी की हाट ॥३॥
दादू दावा आदि का, निरदावा कैसा ।
दिल की दुरमति दूर कर, सौदा कर ऐसा ॥४॥
नहीं तहाँ से सब हुआ, फिर नाहीं हो जाय ।
दादू नाहीं हो रहो, साहब से लौ लाय ॥५॥
उपजै बिनसै गुन धरै, यह माया का रूप ।
दादू देखत थिर नहीं, छिन छाया छिन धूप ॥६॥
बिपति भली गुरु संग मैं, काया कसौटी दुक्ख ।
नाम बिना किस काम के, दादू सम्पति सुक्ख ॥७॥
क्या मुख ले हँस बोलिये, दादू दीजै रोय ।
जनम अमोलक आपना, चले अकारथ खोय ॥८॥

॥ चरनदास के दोहे ॥

सतगुरु के ढिंग जाय के, सन्मुख खावे चोट ।
चकमक लग पथरी झड़े, सकल जलावे खोट ॥१॥
मैं मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगाया बान ।
चरनदास घायल गिरे, तन मन बेधे प्रान ॥२॥
सतगुरु शब्दी तीर है, तन मन कीयो छेद ।
बेदरदी समझे नहीं, बिरही पावे भेद ॥३॥
सतगुरु शब्दी बान है, अँग अँग डाला तोड़ ।
प्रेम खेत घायल गिरे, टाँका लगै न जोड़ ॥४॥
प्रेम बराबर जोग नहिं, प्रेम बराबर ज्ञान ।
प्रेम भक्ति बिन साधवा, सबही थोथा ध्यान ॥५॥

गद् गद् बानी कंठ मैं, आँसू टपके नैन ।
वह तो बिरहिन पीवकी, तड़फत है दिन रैन ॥६॥
हाय हाय पति कब मिलैं, छाती फाटी जाय ।
ऐसा दिन कब होयगा, दर्शन करूँ अघाय ॥७॥
बिन दरशन कलना पड़े, मनुवाँ धरत न धीर ।
चरनदास गुरु चरनबिन, कौन मिटावे पीर ॥८॥
आह जो निकसे दुखभरी, गहिरे लेत उसास ।
मुख पियरो सूखे अधर, आँखैं खरी उदास ॥९॥
अगिन बरे हियरा जरे, भये कलेजे छेद ।
बिरहिन तो बौरी भई, क्या कोइ जाने भेद ॥१०॥
पिया चहो कै मत चहो, मैं तो पिय की दास ।
पिया रंग राती रहूँ, जग से रहत उदास ॥११॥
ज्यौं सेमर का सूवना, ज्यौं लोभीका धर्म ।
अन्न विना भुस कूटना, नाम विना यौं कर्म ॥१२॥
हाथी घोड़े धन घना, चन्द्रमुखी वहु नार ।
नाम बिना जमलोक मैं, पावत दुक्ख अपार ॥१३॥
अज्ञाकारी पीव की, रहे पिया के संग ।
तन मन से सेवा करे, और न दूजा रंग ॥१४॥
पति की ओर निहारिये, औरन से क्या काम ।
सभी देवता छोड़कर, जपिये गुरुका नाम ॥१५॥
मोह महा दुख रूप है, ताको मार निकार ।
प्रीत जगत की छोड़ दे, तब होवे निरवार ॥१६॥
इन्द्रिन के वस मन रहे, मन के वस रहे बुद्ध ।
कहो ध्यान कैसे लगे, ऐसा जहाँ विरुद्ध ॥१७॥

॥ सहजो बाई ॥

धनवन्ते दुखिया सभी, निरधन दुख का रूप ।
साध सुखी सहजो कहे, पायो भेद अनूप ॥१॥
ना सुख बिद्या के पढ़े, ना सुख बाद बिबाद ।
साध सुखी सहजो कहे, लागी सुन्न समाध ॥२॥
जैसे सँड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग ।
तैसे दुख सुख जक्त के, सहजो तू तज भाग ॥३॥
सहजो जग में यौं रहे, ज्यौं जिव्हा मुख माहिं ।
घीव घना भक्षन करे, तौभी चिकनी नाहिं ॥४॥
चलना है रहना नहीं, चलना बिस्वा बीस ।
सहजो तनक सुहाग पर, कहा गुँधावे सीस ॥५॥
सहजो गुरु परताप से, ऐसी जान पड़ी ।
नहीं भरोसा स्वाँस का, आगे मौत खड़ी ॥६॥
ज्यौं तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे पिव माहिं ।
ऐसे जन जग मैं रहैं, गुरु को भूले नाहिं ॥७॥
पहिले बुरा कमाय कर, बाँधी बिष की पोट ।
कोटि करम पल मैं कटे, जब आये गुरु ओट ॥८॥

॥ इति ॥

सूचीपत्र सन्त संग्रह भाग पहिला।

फ़िहरिस्त राधास्वामी मत की पुस्तकों की

॥ नागरी ॥

	क़ीमत
सार बचन छन्द बन्द (हुजूर महाराज के पाठ की पुस्तक से शुद्ध करके नया छपा है	३)
सार बचन वार्तिक	१॥)
प्रेमबानी पहिला भाग	२)
प्रेमबानी दूसरा ,,	२)
प्रेमबानी तीसरा ,,	२)
प्रेमबानी चौथा ,,	१)
प्रेमपत्र पहिला भाग	३)
प्रेम पत्र दूसरा ,,	३)
प्रेम पत्र तीसरा ,,	३)
प्रेम पत्र चौथा ,,	३)
प्रेम पत्र पांचवां ,,	३)
प्रेम पत्र छठा ,,	२)
सार उपदेश	॥)
निज उपदेश	॥)
प्रेम उपदेश	॥)
राधास्वामी मत संदेश	॥)
राधास्वामी मत उपदेश	।=)
गुरु उपदेश	-)

	क़ीमत
प्रश्नोत्तर सत मत	।=)
बचन महात्माओं के	।)
जुगत प्रकाश	॥)
संतसंग्रह भाग पहिला	॥)
सन्त संग्रह भाग दूसरा	॥)
नाम माला	।)
विनती व प्रार्थना	।)
प्रेम प्रकाश	।)
भेदबानी पहिला भाग	।-)
भेदबानी दूसरा ,,	।)
भेदबानी तीसरा ,,	॥)॥
भेदबानी चौथा ,,	।-)
जीवन चरित्र स्वामी जी महराज	॥)
महाराज सा० के बचन पहिला भाग	॥)
" " दूसरा "	॥)
" " तीसरा "	॥)
" " चौथा "	॥)
" " पांचवां "	॥)
हुजूर महाराज का जीवन चरित्र	॥=)

॥ उर्दू ॥

सार बचन नसर	१)
सार उपदेश	॥)
निज उपदेश	॥)
राधास्वामी मत संदेश	॥)
कैटिकिज़म यानी सवाल व जवाब	।=)
सहज उपदेश	।=)

॥ बंगला ॥

सार उपदेश	॥)
राधास्वामी मत संदेश	॥)

॥ अंग्रेज़ी ॥

राधास्वामी मत प्रकाश	॥=)
डिस्कोर्स	२॥)
सोलेस	॥)

पता—

राधास्वामी सतसंग

इलाहाबाद।